# अल-रिसाला

मार्च-अप्रैल 2022

अल-रिसाला
मार्च-अप्रैल 2022

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

**नक़ल-ए-हुरुफ़ी**
सबा जबीं अब्बास

**संपादकीय टीम**
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, राजेश कुमार

**Centre for Peace and Spirituality International**
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
**Goodword Books**
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

**Goodword Bank Details**
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

# विषय-सूची


| | |
|---|---|
| क़ुरआन का मुताला | 4 |
| क़ुरआन-फ़हमी की कुंजी | 5 |
| क़ुरआन का आसान होना | 6 |
| स्ट्रेस मैनेजमेंट | 8 |
| अकसरिय्यत पर अक़ल्लियत का ग़लबा | 10 |
| लेन-देन की किताबत | 12 |
| इल्म और तक़वा | 14 |
| सामूहिक जवाबदेही | 15 |
| साज़िश बे-असर | 17 |
| हालात यकसाँ नहीं रहते | 19 |
| कायनात मारिफ़त का ख़ज़ाना है | 21 |
| ख़्वाहिश के ख़िलाफ़ | 22 |
| दूरगामी  कलाम | 23 |
| टाइम मैनेजमेंट | 25 |
| सुलह बेहतर है | 27 |
| इंतिहा-पसंदी नहीं | 29 |
| सच्चाई की दरयाफ़्त | 31 |
| ज़मीन में फ़साद नहीं | 33 |
| एराज़ का तरीक़ा | 34 |
| यक़ीन-ओ-एतिमाद | 35 |
| बुराई और भलाई | 37 |

| | |
|---|---|
| नफ़्स-ए-अम्मारा, नफ़्स-ए-लव्वामा | 38 |
| इंतिज़ार की पॉलिसी | 40 |
| क़ौमों का उरूज-ओ-ज़वाल | 41 |
| इस्तिहकाम का राज़ | 42 |
| शुक्र से इज़ाफ़ा | 44 |
| सबक़ लेने वाले | 45 |
| मनी मैनेजमेंट | 46 |
| इंसानी इल्म की महदूदियत | 48 |
| अतराफ़-ए-अर्ज़, मरकज़-ए-अर्ज़ | 49 |
| मुलाक़ात का सही तरीक़ा | 50 |
| टकराव से एराज़ | 52 |
| क़ाबिल-ए-एतिमाद मुलाज़िम | 53 |
| सब्र से इमामत | 54 |
| दुश्मन में दोस्त | 56 |
| मुसीबत का सबब | 58 |
| ग़ुस्सा पी जाना | 59 |
| मशवरा मुफ़ीद है | 60 |
| दावत यानी इंसानी ख़ैर-ख़्वाही | 62 |
| सी.पी.एस. का मक़सद | 63 |
| आतिश-फिशाँ का सबक़ | 65 |
| ट्विटर का सी.ई.ओ. | 66 |
| ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ | 68 |

# क़ुरआन का मुताला

एक साहब से मुलाक़ात हुई। जदीद मेयार के मुताबिक़ वह एक आला तालीमयाफ़्ता इंसान हैं। गुफ़्तुगू के दौरान उन्होंने बताया कि उन्हें मुताले का बहुत शौक़ है। वह ज़्यादातर अंग्रेज़ी नॉवेल पढ़ते हैं। इसी के साथ वह संजीदा मौज़ूआत पर लिखी हुई किताबें भी पढ़ते हैं। उनका कमरा अंग्रेज़ी किताबों से भरा हुआ है। मैंने उनसे पूछा कि आपने सैकड़ों नॉवेल और किताबें पढ़ी हैं। इस मुताले के दौरान आपने बहुत-सी ब-मआनी बातें पढ़ी होंगी। इस क़िस्म की कोई एक मिसाल बताइए। वह बहुत जोश-ओ-ख़रोश के साथ यह कहते रहे कि मैंने ऐसी बहुत-सी बातें पढ़ी हैं, मगर वह कोई एक ब-मआनी बात न बता सके। मैंने कई मिसालें देकर बताया कि ब-मआनी बात से मेरी मुराद क्या है, मगर इसरार के बावजूद वह ऐसी कोई एक बात भी न बता सके।

इसका सबब क्या है? इसका सबब यह है कि लोग किताबों को तफ़रीह (entertainment) के लिए पढ़ते हैं। वे किताबों को इसलिए नहीं पढ़ते कि इससे हिकमत (wisdom) और नसीहत की चीज़ें दरयाफ़्त करें और मुताले को अपने ज़हनी इर्तिक़ा (intelellectual development) का ज़रिया बनाएँ और जब मुताले का मक़सद तफ़रीह हो, तो वह हिकमत को हासिल करने का ज़रिया कैसे बन जाएगा।

यही मामला क़ुरआन का है। मौजूदा दौर के मुसलमान क़ुरआन को सिर्फ़ बरकत और फ़ज़ीलत के लिए पढ़ते हैं। इसलिए उन्हें क़ुरआन से हिकमत और नसीहत का कोई आइटम हासिल नहीं हो पाता है।

# क़ुरआन-फ़हमी की कुंजी

क़ुरआन-फ़हमी की कुंजी (key) क्या है? एक सूरत यह है कि आप अपने माइंडसेट के मुताबिक़ इसका जवाब दें। जैसे अमेरिका के साबिक़ कम्युनिस्ट हॉवर्ड फास्ट ने कहा था कि मैं ख़ुद अपने माइंडसेट के मुताबिक़ कम्युनिस्ट बना, मगर इस मामले में सही तरीक़ा यह है कि ख़ुद क़ुरआन से इसका जवाब मालूम किया जाए। इस एतबार से अगर क़ुरआन का मुताला किया जाए तो क़ुरआन में इसका जवाब मुतय्यन तौर पर सिर्फ़ एक मिलेगा और वह है तक़वा यानी क़ुरआन के मुताबिक़, तक़वा क़ुरआन को समझने की कुंजी है।

इस सिलसिले में क़ुरआन की तीन आयतें हैं—

"ذَٰلِكَ الْكِتَابُ لَا رَيْبَ فِيهِ هُدًى لِلْمُتَّقِينَ"

"यह अल्लाह की किताब है। इसमें कोई शक नहीं। इसमें हिदायत है अहल-ए-तक़वा के लिए।" (2:2)

दूसरी आयत है—

"وَاتَّقُوا اللَّهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللَّهُ"

"अल्लाह से डरो, अल्लाह तुम्हें इल्म देगा।" (2:282)

एक और आयत है—

"إِنْ تَتَّقُوا اللَّهَ يَجْعَلْ لَكُمْ فُرْقَانًا"

"अगर तुम अल्लाह से डरोगे तो वह तुम्हें फ़ुरक़ान अता करेगा।" (8:29)

क़ुरआन की इन आयतों से मालूम होता है कि क़ुरआन के मआने को समझने के लिए सबसे ज़्यादा अहम चीज़ यह है कि आदमी के अंदर तक़वे की सिफ़त पाई जाती हो। तक़वे का मतलब ग्यारहवीं सदी

के मशहूर आलिम राग़िब इस्फ़हानी ने इस तरह लिखा है—

"جعل النفس في وقاية مما يخاف"

"आदमी जिस चीज़ से डरे, उससे अपना बचाव करे।"

(अल-मुफ़रदात, राग़िब-अल-इस्फ़हानी, सफ़्हा 881)

तक़वा आदमी को मुहतात (cautious) इंसान बनाता है। जो आदमी मुहतात ज़हन रखता हो, वह किसी मामले में ग़ैर-ज़िम्मेदाराना राय क़ायम नहीं कर सकता, वह राय बनाने से पहले संजीदगी के साथ ग़ौर करेगा। उसकी यह मुहतात रविश उसे भटकने से बचा लेगी। उसकी रविश इस बात की ज़ामिन बन जाएगी कि वह ग़ैर-ज़िम्मेदाराना राय क़ायम करने से बचे। वह जो राय क़ायम करे, हर पहलू से ग़ौर करके क़ायम करे।

## क़ुरआन का आसान होना

क़ुरआन के बारे में एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

"وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْآنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُدَّكِرٍ"

"और हमने क़ुरआन को नसीहत के लिए आसान कर दिया है, तो क्या कोई है नसीहत हासिल करने वाला।" (54:17)

इसका मतलब यह है कि क़ुरआन वुज़ूह (clarity) की ज़बान में है, क़ुरआन ब-एतबार उस्लूब की ऐसी ज़बान में नहीं है, जिसका मफ़हूम समझना इंसान के लिए मुश्किल हो। इसकी एक मिसाल यह है कि क़ुरआन में अल्लाह रब्बुल आलमीन के बारे में यह आयत आई है—

"قُلْ هُوَ اللَّهُ أَحَدٌ."

"कहो, अल्लाह एक है।" (112:1)

यह वुज़ूह की एक मिसाल है। यह आयत कोई शख़्स सुने तो वह फ़ौरन इसका मतलब समझ लेगा।

इसके बर-अक्स अगर ख़ुदा के बारे में क़ुरआन की तालीम तसलीस (trinity) के तसव्वुर पर मबनी हो तो सुनने वाले को इसका मतलब फ़ौरन समझ में नहीं आएगा। क़ुरआन में ख़ुदा का तसव्वुर बताते हुए अगर यह कहा जाए कि ख़ुदा का तसव्वुर التثليث فی التوحيد والتوحيد فی التثليث पर मबनी है, जिसे अंग्रेज़ी ज़बान में 'ट्रिनिटी' कहा जाता है यानी 'एक में तीन और तीन में एक' तो इसका मतलब समझने के लिए क़ुरआन के क़ारी को एक मुद्दत तक ग़ौर करना पड़ेगा।

इसी तरह अब्बासी दौर में मुसलमानों के दरमियान जो 'इल्म-ए-कलाम' पैदा हुआ, वह पूरा-का-पूरा ऐसी ज़बान में है, जिसके अंदर कोई वुज़ूह (clarity) नहीं। मसलन अल्लाह के ताल्लुक़ से इल्म-ए-कलाम का एक जुमला यह है—

"القَوْل بِوُجُوب وجود مَوْجُود وجوده لَهُ
لذاته غير مفتقر إِلَى مَا يسند وجوده إِلَيْهِ."

"उसके वुजूद के मौजूद होने के वुजूद का वुजूब उसकी ज़ात है, किसी की एहतियाज के बग़ैर, जिसकी तरफ़ उसके वुजूद का इनहिसार हो।"

(ग़ायत उल-मराम फ़ी इल्म इल-कलाम, आमदी, सफ़्हा 9)

हक़ीक़त यह है कि क़ुरआन का मतन (text) जब आसान और क्लियर ज़बान में है, तो उसकी तफ़्सीर भी आसान और क्लियर ज़बान में लिखी जाए। आसान और क्लियर ज़बान से मुराद फ़ितरी उस्लूब है यानी ग़ैर-पेचीदा उस्लूब (uncomplicated style)।

# स्ट्रेस मैनेजमेंट

ज़िंदगी में बार-बार मसाइल और मुसीबतें आती हैं। ऐसा हर मर्द और औरत के साथ पेश आता है। इससे किस तरह कामयाबी के साथ निपटा जाए, इसका जवाब क़ुरआन की सूरह अल-बक़रा में मिलता है—

"وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِنَ الْخَوْفِ وَالْجُوعِ وَنَقْصٍ مِنَ الْأَمْوَالِ وَالْأَنْفُسِ وَالثَّمَرَاتِ وَبَشِّرِ الصَّابِرِينَ الَّذِينَ إِذَا أَصَابَتْهُمْ مُصِيبَةٌ قَالُوا إِنَّا لِلَّهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُونَ"

"और हम ज़रूर तुम्हें आज़माएँगे, कुछ डर और भूख से और मालों व जानों और फलों की कमी से। और साबित-क़दम रहने वालों को ख़ुश-ख़बरी दे दो, जिनका हाल यह है कि जब उन्हें कोई मुसीबत पहुँचती है तो वे कहते हैं कि हम अल्लाह के लिए हैं और हम उसी की तरफ़ लौटने वाले हैं।" (2:155-156)

मसाइल और मुसीबतों के वक़्त कोई शख़्स ज़हनी तनाव का शिकार क्यों होता है? इसका सबब यह है कि वह इसे एक ऐसी चीज़ समझता है, जिसे नहीं होना चाहिए था। आदमी अगर यह समझ ले कि जो कुछ पेश आया है, वह ख़ुद फ़ितरत के क़ानून के तहत पेश आया है, तो वह कभी ज़हनी तनाव का शिकार न हो। मसलन अगर आँधी और बारिश आए तो वह भी इंसान के लिए मसला पैदा करती है, मगर आँधी और बारिश के वक़्त आदमी ज़हनी तनाव का शिकार नहीं होता। वह इसे फ़ितरत के क़ानून के तहत होने वाला एक वाक़या समझता है और संतुलित अंदाज़ में इसका सामना करता है।

यही मामला ज़िंदगी के मसाइल और मुसीबतों का भी है। यह चीज़ें ख़ालिक़ के तख़्लीक़ी मंसूबे के तहत पेश आती हैं। वे इंसान के लिए ज़हमत में रहमत (blessing in disguise) की हैसियत रखती हैं। आदमी अगर पेश आनी वाली मुसीबतों को इस हैसियत से ले तो वह कभी ज़हनी तनाव का शिकार न हो।

मसाइब या मसाइल का सामना करने के दो तरीक़े हैं। एक, सब्र का तरीक़ा और दूसरा, बे-सब्री का तरीक़ा। बे-सब्री का तरीक़ा, दूसरे लफ़्ज़ों में, मनफ़ी रद्द-ए-अमल (negative response) का तरीक़ा है। इसके बर-अक्स सब्र का तरीक़ा मुस्बत रद्द-ए-अमल (positive response) का तरीक़ा है। ज़हनी तनाव हमेशा बे-सब्री का नतीजा होता है। इसके मुक़ाबले में सब्र का तरीक़ा आदमी को ज़हनी तनाव का शिकार होने से बचा लेता है।

इस दुनिया में हर आदमी कानून-ए-ख़ुदावंदी, दूसरे लफ़्ज़ों में कानून-ए-फ़ितरत के ताबे है। वह अपने आग़ाज़ में भी इसी क़ानून के मातहत है और अपने आख़िर में भी इसी क़ानून के मातहत। ऐसी हालत में हक़ीक़त-पसंदी का तरीक़ा यह है कि कोई मर्द या औरत जब भी किसी मसले से दो-चार हो तो वह संतुलित अंदाज़ में इसका सामना करे। वह इसे अपने हक़ में ख़ैर समझकर इसे क़ुबूल करे।

इस आयत में मुसीबतों का मक़सद इब्तिला (وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ) बताया गया है। इब्तिला के मआनी इम्तिहान या आज़माइश है। इंसानी ज़िंदगी में इस क़िस्म के इम्तिहान का मक़सद यह है कि इसे हादसों के दरमियान तर्बियत देकर ज़्यादा बेहतर इंसान बनाया जाए। हादसे किसी आदमी के लिए तरक़्क़ी का ज़ीना हैं। हादसों के ज़रिये आदमी का ज़हन बेदार होता है। हादसों के ज़रिये आदमी के अंदर पुख़्तगी (maturity) आती है। हादसे आदमी को एक्शन में लाने का ज़रिया हैं। हादसे आदमी के लिए ज़िंदगी के सफ़र में मेहमीज़ (motivation) का काम करते हैं।

हादसों के बग़ैर आदमी ना-मुकम्मल है। यह हादसे ही हैं, जो आदमी की शख़्सियत को मुकम्मल शख़्सियत बनाते हैं।

इससे मालूम हुआ कि हादसों का सही मुक़ाबला यह नहीं है कि अपने ज़हनी अमल को दबाने (suppress) की कोशिश की जाए। बहुत-से लोग यही तरीक़ा इख़्तियार करते हैं। वे सिगरेट या शराब के ज़रिये उसे भुलाने की कोशिश करते हैं। और दुसरे मख़्सूस तरीक़ों के ज़रिये भी अपने अंदर ज़हनी अमल को रोक देना चाहते हैं। वे हक़ीक़ी ज़िंदगी से फ़रार (escapism) का कोई तरीक़ा तलाश करते हैं। वे मेडिटेशन के ज़रिये अपने ज़ेहन को एक ऐसी हालत में ले जाते हैं, जिसे ज़हनी तख़्दीर (intellectual anesthesia) कहा जा सकता है। इस क़िस्म के तमाम तरीक़े फ़ितरत के ख़िलाफ़ हैं और जो चीज़ फ़ितरत के ख़िलाफ़ हो, वह कभी इंसान के लिए मुफ़ीद नहीं हो सकती।

## अकसरिय्यत पर अक़ल्लियत का ग़लबा

क़ुरआन की सूरह अल-बक़रा में एक क़दीम वाक़ये का ज़िक्र है। इसके तहत फ़ितरत के एक अबदी क़ानून को बताया गया है— एक ऐसा क़ानून, जो कभी बदलने वाला नहीं। इस सिलसिले में क़ुरआन की मज़्कूरा आयत का एक हिस्सा यह है—

"كَمْ مِنْ فِئَةٍ قَلِيلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيرَةً بِإِذْنِ اللَّهِ وَاللَّهُ مَعَ الصَّابِرِينَ."

"कितने ही छोटे गिरोह अल्लाह के हुक्म से बड़े गिरोह पर ग़ालिब आए हैं और अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है।"

(2:249)

क़ुरआन की इस आयत में छोटे गिरोह और बड़े गिरोह के दरमियान पेश आने वाले जिस वाक़ये को बताया गया है, वह कोई पुर-असरार

बात नहीं, वह मुकम्मल तौर पर एक फ़ितरी वाक़या है, जो मालूम क़ानून-ए-फ़ितरत के तहत पेश आता है। मज़ीद यह कि इसका ताल्लुक़ हर गिरोह से है, चाहे वह मज़हबी हो या ग़ैर-मज़हबी। चाहे वह एक मुल्क का रहने वाला हो या किसी दूसरे मुल्क का रहने वाला। चाहे वह एक ज़माने में रहने वाला हो या किसी दूसरे ज़माना में रहने वाला।

अस्ल यह है कि हर इंसान के अंदर पैदाइशी तौर पर अथाह सलाहियत मौजूद है, मगर इब्तिदाई तौर पर यह सलाहियत सोई हुई होती है। जो चीज़ उस सलाहियत को जगाती है, वह सिर्फ़ एक है और वह चैलेंज की हालत है यानी एक-दूसरे से मुक़ाबले (competition) का चैलेंज। इसी हालत को क़ुरआन में 'अदावत' यानी दुश्मनी (अल-बक़रा, 2:30; अल-आराफ़, 7:24) से ताबीर किया गया है। चैलेंज के हालात आदमी के अंदर सोई हुई सलाहियतों को जगाते हैं और जिन लोगों को चैलेंज वाले हालात पेश न आएँ, उनके अंदर छिपी हुई सलाहियतें बेदार नहीं होतीं। वे एक कमतर इंसान की मानिंद जीते हैं और कमतर इंसान की मानिंद मर जाते हैं।

छोटे गिरोह और बड़े गिरोह के दरमियान फ़र्क़ इसी फ़ितरी क़ानून की बिना पर पेश आता है। किसी समाज में जब एक गिरोह कम तादाद में हो और दूसरा गिरोह ज़्यादा तादाद में तो इस फ़र्क़ की बिना पर दोनों को अलग-अलग हालात से दो-चार होना पड़ता है। एक को सब्र की मशक़्क़त से गुज़रना पड़ता है और दूसरा सब्र की मशक़्क़त से बचा रहता है। छोटा गिरोह मुसलसल तौर पर बड़े गिरोह के मुक़ाबले में चैलेंज की हालत में रहता है। इस दबाव की बिना पर छोटे गिरोह के लोगों की सलाहियतें मुसलसल बेदार होती रहती हैं। उसके मुक़ाबले में दूसरा गिरोह अपनी बरतर पोज़ीशन की बिना पर चैलेंज या दबाव की सूरत-ए-हाल से बचा हुआ होता है। इसलिए उसकी सलाहियतें ज़्यादा बेदार नहीं होतीं।

इस फ़र्क़ की बिना पर ऐसा होता है कि छोटे या कमज़ोर गिरोह की तख़्लीक़ियत (creativity) बढ़ती रहती है। इसके मुक़ाबले में दूसरा गिरोह मुसलसल तौर पर ग़ैर-तख़्लीक़ियत (non-creativity) का शिकार हो जाता है। यह अमल ख़ामोशी के साथ और मुसलसल तौर पर जारी रहता है, यहाँ तक कि वह वक़्त आता है, जबकि एक गिरोह पूरे मआनों में तख़्लीक़ी गिरोह (creative group) बन जाता है और दूसरा गिरोह पूरे मआनों में ग़ैर-तख़्लीक़ी गिरोह (non-creative group) की सूरत इख़्तियार कर लेता है।

क़ुरआन की यह आयत एक फ़ितरी हक़ीक़त को बताती है। इसका मतलब यह है कि माइनॉरिटी मुसलसल अपनी क़ाबिलियत को बढ़ाती रहती है, यहाँ तक कि वह तादाद की क़िल्लत के बावजूद अपनी बरतर सिफ़ात की बिना पर अमलन ग़ालिब हैसियत हासिल कर लेती है। इसके बर-अक्स मेजॉरिटी मुसलसल तौर पर 'डी-रेलमेंट' का शिकार होती रहती है। वह बाहमी इत्तिहाद, गहरी सोच और दूरगामी नतीजाख़ेज़ अमल जैसी सलाहियतों से महरूम होती चली जाती है, यहाँ तक कि वह आख़िरकार अपनी ही दुनिया में अमलन ज़ेर होकर रह जाता है।

## लेन-देन की किताबत

क़ुरआन के मुताबिक़, दुरुस्त मामले की बेहद अहमियत है। दुरुस्त मामला किसी इंसान के हक़-परस्त होने की पहचान है। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक आयत का तर्जुमा यह है—

"ऐ ईमान वालो, जब तुम किसी मुक़र्रर मुद्दत के लिए उधार का लेन-देन करो तो उसे लिख लिया करो और उसे लिखे तुम्हारे दरमियान

कोई लिखने वाला इंसाफ़ के साथ और लिखने वाला लिखने से इनकार न करे, जैसा अल्लाह ने उसे सिखाया। इसी तरह उसे चाहिए कि लिख दे और वह शख़्स लिखवाए, जो क़र्ज़दार है और वह डरे अल्लाह से, जो उसका रब है और इसमें कोई कमी न करे। और अगर वह शख़्स जो क़र्ज़दार है, नासमझ हो या कमज़ोर हो या ख़ुद लिखवाने की क़ुदरत न रखता हो तो चाहिए कि उसका वली इंसाफ़ के साथ लिखवा दे और अपने मर्दों में से दो आदमियों को गवाह कर ले और अगर दो मर्द न हों तो फिर एक मर्द और दो औरतों को, उन लोगों में से जिन्हें तुम पसंद करते हो, ताकि अगर एक औरत भूल जाए तो दूसरी औरत उसे याद दिला दे। और गवाह इनकार न करें, जब वे बुलाए जाएँ और मामला छोटा हो या बड़ा, मीआद के ताय्युन के साथ उसे लिखने में काहिली न करो। यह लिख लेना अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इंसाफ़ का तरीक़ा है और गवाही को ज़्यादा दुरुस्त रखने वाला है और ज़्यादा इम्कान है कि तुम शक-ओ-शुबह में न पड़ो, लेकिन अगर कोई सौदा हाथो-हाथ का हो जिसका तुम आपस में लेन-देन किया करते हो तो तुम पर कोई इल्ज़ाम नहीं कि तुम उसे न लिखो, मगर जब सौदा करो तो गवाह बना लिया करो और किसी लिखने वाले को या गवाह को तकलीफ़ न पहुँचाई जाए और अगर ऐसा करोगे तो यह तुम्हारे लिए गुनाह की बात होगी। और अल्लाह से डरो, अल्लाह तुम्हें सिखाता है और अल्लाह हर चीज़ का जानने वाला है।" (2:282)

यह आयत क़ुरआन की सबसे लंबी आयत है। इससे अंदाज़ा होता है कि बाहमी मामले में किताबत की कितनी ज़्यादा अहमियत है। मामलात में हमेशा शिकायत और इख़्तिलाफ़ का इम्कान रहता है। इसका हल यह है कि मामले के वक़्त उसे बाक़ाएदा सूरत में लिख लिया जाए। किताबत मामले का एक ऐसा मुस्तनद रिकॉर्ड है, जो किसी इम्कानी इख़्तिलाफ़ को तय करने के लिए एक यक़ीनी ज़रिया

है। मामले को बाक़ाएदा तहरीर में लाना समाज के बाहमी इख़्तिलाफ़ को ख़त्म करने का एक असरदार ज़रिया है।

नफ़्सियाती तहक़ीक़ से मालूम हुआ है कि औरत और मर्द के ज़हन की बनावट में फ़र्क़ है। इस फ़र्क़ की बिना पर ऐसा है कि मर्द के अंदर किसी एक चीज़ पर फ़ोकस करने की ज़्यादा सलाहियत होती है, जबकि औरत का फ़ोकस फैला हुआ होता है। इस बिना पर यह इम्कान है कि एक औरत किसी मामले को पूरी तरह अपनी ज़हनी गिरफ़्त में न ले सके। इस फ़र्क़ के पेश-ए-नज़र यह एहतियाती तदबीर बताई गई कि गवाह अगर औरत है तो दो औरतों को गवाह बना लो, ताकि एक औरत दूसरी औरत की तलाफ़ी कर सके (तफ़्सील के लिए देखिए, अल-रिसाला, जून, 2021, उन्वान : औरत और मर्द का फ़र्क़)

## इल्म और तक़वा

सूरह अल-बक़रा में फ़रमाया गया है—

"وَاتَّقُوا اللَّهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللَّهُ."

"अल्लाह से डरो और अल्लाह तुम्हें तालीम देता है।" (2:282)

इससे मालूम हुआ कि इल्म का तक़वे से बहुत गहरा ताल्लुक़ है। हक़ीक़त यह है कि इल्म और सही फ़िक्र दोनों एक-दूसरे से अलग हैं। आदमी के पास अगर इल्म या मालूमात का ज़ख़ीरा हो तो इसका मतलब यह नहीं कि वह दुरुस्त फ़िक्र या सही सोच का भी हामिल होगा।

अस्ल यह है कि साइंस में गणित और प्रयोग की बिना पर सटीकता आ जाती है, मगर जहाँ तक ग़ैर-साइंसी इल्म का ताल्लुक़

है, उनमें इस क़िस्म की सटीकता मुमकिन नहीं। इस दूसरी क़िस्म के उलूम में सही फ़िक्र के लिए संजीदगी (sincerity) लाज़िमी तौर पर ज़रूरी होती है। तक़वा आदमी के अंदर यही संजीदगी पैदा करता है। यह संजीदगी इस बात की ज़मानत बन जाती है कि आदमी का इल्म उसे भटकने से बचा ले।

तक़वा किब्र-ओ-ग़ुरूर का क़ातिल है। तक़वा आदमी के अंदर अहंकार (egoism) का ख़ात्मा कर देता है। तक़वा आदमी को ख़ुद-पसंदी से बचा लेता है। तक़वा आदमी के अंदर यह सलाहियत पैदा करता है कि वह बेलाग तौर पर सोचे और किसी मिलावट के बग़ैर अपनी राय क़ायम कर सके। यही वजह है कि तक़वे को सही इल्म का ज़रिया बताया गया है।

## सामूहिक जवाबदेही

सूरह आले-इमरान में बताया गया है कि किसी मुआशरे की सलाह-व-फ़लाह के लिए किस चीज़ की ज़रूरत है। आयत के अल्फ़ाज़ ये हैं—

”وَلْتَكُنْ مِنْكُمْ أُمَّةٌ يَدْعُونَ إِلَى الْخَيْرِ وَيَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ.“

“और ज़रूरी है कि तुम में एक गिरोह हो, जो नेकी की तरफ़ बुलाए और भलाई का हुक्म दे और बुराई से रोके और ऐसे ही लोग कामयाब होंगे।” (3:104)

क़ुरआन की इस आयत में मुआशरे की फ़लाह के लिए जिस एहतिमाम का तज़्किरा किया गया है, इसे सामूहिक जवाबदेही का निज़ाम कहा जा सकता है। यह सामूहिक जवाबदेही तमाम-तर एक

ग़ैर-सियासी इदारा है। इसका कोई ताल्लुक़ हुकूमत से नहीं। हुकूमत क़ायम हो या क़ायम न हो, हर हाल में सामूहिक जवाबदेही का यह काम ग़ैर-हुकूमती इदारों के ज़रिये अंजाम पाता है।

हर समाज में ऐसा होता है कि उसके बाज़ अफ़राद ऐसे काम करते हैं, जिससे लोगों के अंदर इश्तिआल फैले और फ़साद की नौबत आ जाए। इसे रोकने की तदबीर यह है कि समाज के अंदर ऐसे अफ़राद और ऐसी तंज़ीमें हों, जो हर ऐसे मौक़े पर हरकत में आ जाएँ। वे बुराई करने वालों की मज़म्मत करें। वे समाज को तैयार करें कि वह ऐसे अफ़राद की बराह-ए-रास्त या बिल-वास्ता (directy or indirectly) हिमायत न करे। वे नसीहत और हिदायत के तमाम ज़राए को इस्तेमाल करके बुराई में मुलव्विस होने वाले अफ़राद की इस्लाह की मुहिम चलाएँ। वे ऐसा माहौल पैदा करें कि बुरे अफ़राद के लिए समाज में बुराई फैलाना मुश्किल हो जाए।

यही सामूहिक जवाबदेही का निज़ाम है। यही निज़ाम किसी समाज की फ़लाह का ज़ामिन है। जिस समाज में ऐसा हो कि समाज के बा-असर लोग बुरे अफ़राद की मज़म्मत न करें, वे ऐसे अफ़राद की हौसला-शिकनी के लिए खड़े न हों, ऐसा समाज यक़ीनी तौर पर फ़लाह से महरूम रहेगा।

आयत में फ़रमाया है कि—

"وَأُولَئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ."

"और ऐसे ही लोग कामयाब होने वाले हैं।"

यह कोई पुर-असरार बात नहीं। यह दरअस्ल फ़ितरत का एक क़ानून है, जिसे इन अल्फ़ाज़ में बताया गया है। अस्ल यह है कि इज्तिमाई फ़लाह का बहुत कम ताल्लुक़ हुकूमत और क़ानून से है। इसका ज़्यादा ताल्लुक़ उन तामीरी सरगर्मियों से है, जो ग़ैर-हुकूमती

सतह पर अंजाम दी जाएँ। किसी भी समाज में यह होना चाहिए कि उसके अफ़राद दूसरों के मामले में बे-परवाह (indifferent) बनकर न रहें। वे अपनी ज़ाती फ़लाह के साथ दूसरों की फ़लाह भी दिल से चाहते हों। जिस समाज के अफ़राद में यह स्पिरिट हो, वहाँ यह होगा कि लोग एक-दूसरे को नसीहत करते रहेंगे। वे ज़ालिम के मुक़ाबले में मज़लूम का साथ देंगे। वे किसी दूसरे को तकलीफ़ में देखेंगे तो वे उस पर तड़प उठेंगे और इज्तिमाई ज़ोर के साथ उसके मसले को हल करने की कोशिश करेंगे। वे यह चाहेंगे कि समाज में बुराई दबे और अच्छाई फैले। इस क़िस्म का इस्लाही मिज़ाज ही किसी समाज की तामीर-ओ-तरक़्क़ी का सबसे बड़ा ज़ामिन है। क़ुरआन की इस आयत में दरअस्ल इज्तिमाई ज़मीर की बात कही गई है, हुकूमत-ओ-इक़्तिदार से इसका बराह-ए-रास्त कोई ताल्लुक़ नहीं।

## साज़िश बे-असर

सूरह आले-इमरान में बताया गया है कि साज़िश का सबसे ज़्यादा मुअस्सिर तोड़ क्या है। वह है सब्र और तक़वा। सब्र और तक़वा ब-ज़ाहिर कोई माद्दी ताक़त नहीं, मगर सब्र व तक़वे के ज़रिये साज़िश का कामयाब दिफ़ा किया जा सकता है। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

”وَإِنْ تَصْبِرُوا وَتَتَّقُوا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ شَيْئًا إِنَّ اللَّهَ بِمَا يَعْمَلُونَ مُحِيطٌ“

“अगर तुम सब्र करो और ख़ुदा का तक़वा इख़्तियार करो तो उनकी कोई तदबीर तुम्हें नुक़सान नहीं पहुँचाएगी। जो कुछ वे कर रहे हैं, ख़ुदा उसका इहाता किए हुए है।” (3:120)

क़ुरआन की इस आयत में फ़ितरत के एक क़ानून को बताया गया है। वह यह कि इस दुनिया में अस्ल मसला साज़िश की मौजूदगी नहीं है, बल्कि अस्ल मसला यह है कि साज़िश के फ़ितरी तोड़ के लिए सब्र और तक़वा मौजूद न हो। मौजूदा दुनिया को चैलेंज और मुक़ाबले के उसूल पर बनाया गया है। इसलिए यहाँ हमेशा ऐसा होता है कि एक फ़रीक़ दूसरे फ़रीक़ से आगे बढ़ने के लिए साज़िश करता है, लेकिन अगर ज़ेर-ए-साज़िश फ़रीक़ के अंदर सब्र और तक़वे की सिफ़त मौजूद हो तो वह उसके लिए हिफ़ाज़त की गारंटी बन जाएगा।

सब्र का मतलब यह है कि जो कार्रवाई की जाए, वह रद्द-ए-अमल के तहत न की जाए, बल्कि मुस्बत ग़ौर-ओ-फ़िक्र के बाद ठंडे ज़हन के तहत की जाए। तक़वा यानी 'गॉड कांश्यसनेस' (God-consciousness) इस बात की ज़मानत है कि आदमी किसी भी हाल में इंसाफ़ से न हटे। वह जो कार्रवाई करे, वह ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई हुदूद के अंदर करे। वह ख़ुदा के अहकाम का पाबंद हो, न कि ख़ुद अपनी ख़्वाहिशात का पाबंद।

साज़िश या तशद्दुद के मुक़ाबले में अगर जवाबी साज़िश और तशद्दुद का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए तो इससे दोनों पार्टियों के दरमियान ज़िद्द बढ़ती है। नफ़रत और इंतिक़ाम की नफ़्सियात जागती हैं। एक-दूसरे के दरमियान वह मनफ़ी जज़्बा पैदा होता है, जिसे आम तौर पर सबक़ सिखाना कहते हैं। इस तरह के माहौल में अस्ल मसला मज़ीद बढ़ता है। इंतिक़ाम-दर-इंतिक़ाम के नतीजे में वह एक ऐसी बुराई की सूरत इख़्तियार कर लेता है, जो कभी ख़त्म होने वाला नहीं।

इसके बर-अक्स सब्र और तक़वा का तरीक़ा गोया मनफ़ी (negative) हालात का जवाब मुस्बत रद्द-ए-अमल (positive response) से देना है। यह तबाही के जवाब में तामीर के उसूल पर मसले को हल करना है। वह दो-तरफ़ा तशद्दुद को यक-तरफ़ा बना देना है। जब भी कोई फ़र्द या गिरोह इस तरह सब्र-ओ-तक़वा का तरीक़ा

इख़्तियार करे तो वह दो बात को यक़ीनी बना लेता है— सामने वाले के हक़ में नाकामी और अपने हक़ में कामयाबी।

## हालात यकसाँ नहीं रहते

सूरह आले-इमरान में एक सूरत-ए-हाल पर तब्सिरा है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के साथियों को बद्र के मुक़ाबले में अपने मुख़ालिफ़ीन पर फ़तह हासिल हुई थी। उसके बाद उहद में उन्हें अपने मुख़ालिफ़ीन से शिकस्त हो गई। इस पर तब्सिरा करते हुए क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

”إِنْ يَمْسَسْكُمْ قَرْحٌ فَقَدْ مَسَّ الْقَوْمَ قَرْحٌ
مِثْلُهُ وَتِلْكَ الْأَيَّامُ نُدَاوِلُهَا بَيْنَ النَّاسِ“

“अगर तुम्हें कोई ज़ख़्म पहुँचा है तो दुश्मन को भी वैसा ही ज़ख़्म पहुँच चुका है और हम इन अय्याम को लोगों के दरमियान बदलते रहते हैं।” (3:140)

क़ुरआन की इस आयत में क़ौमों के बारे में एक तारीख़ी क़ानून को बयान किया गया है और वह यह कि इस दुनिया में यह मुमकिन नहीं कि कोई क़ौम हमेशा ग़ालिब रहे या हमेशा फ़तह हासिल करती रहे। इस बिना पर हालात हमेशा किसी एक क़ौम के मुवाफ़िक़ नहीं होते। हालात का फ़ैसला कभी एक गिरोह के हक़ में होता है और कभी दूसरे गिरोह के हक़ में। ऐसी हालत में लोगों को चाहिए कि वे तारीख़ के फ़ैसले को क़ुबूल करें। वे शिकायत और एहतिजाज के बजाय नए सिरे से अपने अमल की मंसूबा-बंदी करें।

ऐसा इसलिए होता है कि मौजूदा दुनिया को मुक़ाबले के उसूल पर बनाया गया है। इस दुनिया में हमेशा एक गिरोह और दूसरे गिरोह के दरमियान मुक़ाबला जारी रहता है। इस मुक़ाबले में कभी एक गिरोह को

जीत हासिल होती है और कभी दूसरे गिरोह को। यह माहौल क़ौमों को मुसलसल तौर पर बेदार रखता है। इसकी वजह से तरक़्क़ी का अमल बराबर जारी रहता है।

ऐसी हालत में हक़ीक़त-पसंदी यह है कि हारने वाले और जीतने वाले दोनों अपनी हार और जीत को वक़्ती समझें। न हारने वाला पस्त हिम्मत हो और न जीतने वाला तकब्बुर की नफ़्सियात में मुब्तला हो जाए। इस मामले में संतुलित रवैये पर क़ायम रहना गोया क़ुदरत के फ़ैसले को तस्लीम करना है। इसके बर-अक्स संतुलित रवैये से हटना गोया क़ुदरत के फ़ैसला पर राज़ी न होना है, मगर जो लोग इस मामले में क़ुदरत के फ़ैसले पर राज़ी न हों, वे ख़ुद अपना ही नुक़सान करेंगे, न कि किसी और का।

यह मामला पूरी तरह फ़ितरत के क़ानून का मामला है। वह किसी के लिए और किसी की वजह से बदलने वाला नहीं। ऐसी हालत में कोई फ़रीक़ अगर इसे क़ुबूल न करे तो उसका यह क़ुबूल न करना ऐसा ही है, जैसे कोई शख़्स यह कहे कि मुझे फूल के साथ काँटा मतलूब नहीं या कोई शख़्स इस बात पर एहतजाजी मुहिम चलाए कि दुनिया के निज़ाम को इस तरह बदल जाना चाहिए कि यहाँ सिर्फ़ मेरे लिए मुवाफ़िक़ मौसम हो और जो मौसम मेरे ख़िलाफ़ हो, वह कभी ज़मीन पर न आए।

आलमी निज़ाम के बारे में इस क़िस्म की शिकायत व एहतिजाज जितना बे-मआनी है, उतना ही बे-मआनी वह शिकायत-ओ-एहतिजाज भी है, जो सियासी तब्दीलियाँ या क़ौमों के उरूज-ओ-ज़वाल पर किया जाए।

# कायनात मारिफ़त का ख़ज़ाना है

क़ुरआन में सबसे ज़्यादा जिस चीज़ पर ज़ोर दिया गया है, वह 'तदब्बुर' और 'तफ़क्कुर' (contemplation and reflection) है। क़ुरआन के मुताबिक़, हमारी गिर्द-ओ-पेश की दुनिया हक़ाइक़ का ख़ज़ाना है। इसमें ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिये आदमी ज़िंदगी की हक़ीक़तों को दरयाफ़्त कर सकता है। इस सिलसिले में क़ुरआन की कुछ आयतें इस तरह हैं—

"إِنَّ فِي خَلْقِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ وَاخْتِلَافِ اللَّيْلِ وَالنَّهَارِ لَآيَاتٍ لِأُولِي الْأَلْبَابِ الَّذِينَ يَذْكُرُونَ اللَّهَ قِيَامًا وَقُعُودًا وَعَلَى جُنُوبِهِمْ وَيَتَفَكَّرُونَ فِي خَلْقِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هَذَا بَاطِلًا سُبْحَانَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ."

"आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में और रात-दिन के बारी-बारी से आने में अक़्ल वालों के लिए बहुत निशानियाँ हैं। जो खड़े और बैठे व अपनी करवटों पर अल्लाह को याद करते हैं और आसमानों व ज़मीन की पैदाइश में ग़ौर करते रहते हैं। वे कह उठते हैं कि ऐ हमारे रब, तूने यह सब बे-मक़सद नहीं बनाया। तू पाक है, पस हमें आग के अज़ाब से बचा।" (3:190-191)

क़ुरआन की इन आयतों में जो बात कही गई है, उसे 'साइंस ऑफ़ ट्रुथ' (science of truth) से ताबीर किया जा सकता है। कायनात के साइंसी मुताले का मक़सद सिर्फ़ टेक्निकल तरक़्क़ी नहीं है। इससे बढ़कर उसका एक और मक़सद है और वह है ख़ालिक़ की तख़्लीक़ात (creations) में ख़ालिक़ को दरयाफ़्त करना। तख़्लीक़ात का गहरा मुताला करके ज़िंदगी के राज़ को मालूम करना। माद्दी

कायनात की तहक़ीक़ करके यह जानना कि उसके नक़्शे के मुताबिक़ इंसानी तरक़्क़ी का क़ानून क्या है।

क़ुरआन (अल-मुल्क, 67:3) बताता है कि कायनात में कोई ख़लल (flaw) नहीं। इस तरह कायनात का मुताला इंसान के लिए इसमें मददगार है कि वह अपनी ज़िंदगी की तामीर-ओ-तश्कील भी कामयाबी के साथ अंजाम दे सके। हक़ीक़त यह है कि इंसान के लिए अपनी ज़िंदगी में जो नक़्शा मतलूब है, वह वही है, जो बक़िया कायनात में अमलन क़ायम है। चुनाँचे आदमी जब कायनात का मुताला करता है तो वह इसमें एक तरफ़ ख़ालिक़ की तजल्लियात को पा लेता है और दूसरी तरफ़ उसे यह भी मालूम होता है कि उसे अपनी ज़िंदगी की कामयाब तामीर किन बुनियाद पर करनी चाहिए।

## ख़्वाहिश के ख़िलाफ़

सूरह अन-निसा में इस पर ज़ोर दिया गया है कि शौहर और बीवी में अगर इख़्तिलाफ़ हो जाए और वे एक-दूसरे को ना-पसंद करने लगें तो दोनों को टकराव के बजाय मुवाफ़क़त (adjustment) का तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए। इस सिलसिले में कहा गया है—

”فَإِنْ كَرِهْتُمُوهُنَّ فَعَسَى أَنْ تَكْرَهُوا شَيْئًا وَيَجْعَلَ اللَّهُ فِيهِ خَيْرًا كَثِيرًا.“

“अगर वह तुम्हें ना-पसंद हो तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसंद न हो, मगर अल्लाह ने उसमें तुम्हारे लिए बहुत बड़ी भलाई रख दी हो।” (4:19)

शौहर और बीवी के ताल्लुक़ात में जब भी इख़्तिलाफ़ पैदा होता है, तो इसका सबब यह होता है कि हर एक दूसरे के ना-पसंदीदा पहलू को बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगता है। हालाँकि उसी वक़्त उसके अंदर

किसी और एतबार से पसंदीदा पहलू मौजूद होता है, मगर ग़ुस्से की वजह से दोनों पसंदीदा पहलू को नहीं देख पाते हैं। हक़ीक़त यह है कि इस दुनिया में कोई भी आदमी सिर्फ़ बुरा नहीं होता। हर आदमी की ज़िंदगी का कोई मुस्बत पहलू होता है और कोई मनफ़ी पहलू। अगर मनफ़ी पहलू को नज़र-अंदाज़ करके मामला किया जाए तो उसके ज़बरदस्त फ़ायदे दोनों फ़रीक़ को हासिल होंगे।

शादीशुदा ज़िंदगी में जब एक मर्द और औरत दोनों अपने आपको शामिल करते हैं, तो यह दोनों के लिए सबसे ज़्यादा क़रीबी ताल्लुक़ात के हम-मआनी होता है। इस क़िस्म के क़रीबी ताल्लुक़ात बेहद मुफ़ीद हैं, मगर इसी के साथ इस क़िस्म के क़रीबी ताल्लुक़ में ऐसा भी होता है कि दोनों के दरमियान फ़र्क़ की बिना पर इख़्तिलाफ़ात पैदा हो जाएँ और फिर किसी एक फ़र्क़ की बिना पर दोनों एक-दूसरे को मतलूब से कम समझने लगें, मगर यह सरासर नादानी है। अक़्लमंदी यह है कि क़रीबी ताल्लुक़ के तामीरी पहलुओं को ध्यान में रखा जाए और उनसे भरपूर तौर पर फ़ायदा उठाया जाए। जहाँ तक ना-पसंदीदा पहलुओं की बात है, तो इस मामले में हक़ीक़त-पसंदाना तरीक़ा इख़्तियार करते हुए उसे नज़र-अंदाज़ कर देना चाहिए, यही मर्द को भी करना है और यही औरत को भी।

## दूरगामी कलाम

क़ुरआन की सूरह अन-निसा में कामयाब कलाम का ज़िक्र किया गया है। पैग़ंबर से ख़िताब करते हुए बताया गया है कि जो लोग ब-ज़ाहिर इनकार की रविश इख़्तियार किए हुए हैं, उन्हें किस तरह इक़रार की रविश पर लाया जाए। चुनाँचे इरशाद हुआ है—

"فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَعِظْهُمْ وَقُلْ لَهُمْ فِي أَنْفُسِهِمْ قَوْلًا بَلِيغًا."

"पस तुम उनसे एराज़ करो और उन्हें नसीहत करो और उनसे ऐसी बात कहो, जो उनके दिलों तक पहुँचने वाली हो।"

(4:63)

जब कोई शख़्स किसी बात को मानने से इनकार करता है, तो उसका यह इनकार सादा तौर पर महज़ इनकार नहीं होता, बल्कि इसका सबब यह होता है कि ज़हनी कंडीशनिंग की बिना पर वह बात उसकी समझ में नहीं आती। लंबी मुद्दत तक एक ख़ास फ़िक्री माहौल में रहने की वजह से ऐसा होता है कि वह चीज़ों को एक ख़ास एंगल से देखने लगता है। इसलिए वह चीज़ों को किसी और एंगल से देख नहीं पाता। अक्सर हालात में किसी इंसान का इनकार उसकी फ़िक्री मजबूरी की बिना पर होता है, न कि दानिस्ता सरकशी की बिना पर।

ऐसी हालत में ज़रूरत होती है कि सब्र-आज़मा कोशिश के ज़रिये उसके अंदर नई सोच लाई जाए। उसके ज़हन के ऊपर पड़े हुए पर्दों को हटा दिया जाए। इस्लाह करने वाले का काम यह है कि वह लोगों की मनफ़ी रविश को नज़र-अंदाज़ करते हुए ख़ैर-ख़्वाहाना तौर पर उन्हें समझाने-बुझाने का तरीक़ा जारी रखे। वह उनके ज़हन पर पड़े हुए पर्दों को इस तरह हटाए कि सच्चाई की बात किसी रुकावट के बग़ैर उसके ज़हन तक पहुँच जाए। जब ऐसा होगा तो उसके लिए सच्चाई का एतिराफ़ उसी तरह आसान बन जाएगा, जिस तरह किसी बाप के लिए अपने बेटे को पहचानना आसान होता है।

# टाइम मैनेजमेंट

क़ुरआन की सूरह अन-निसा में नमाज़ का हुक्म बताया गया है, जो इस्लाम में अहमतरीन इबादत है। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक आयत यह है—

"إِنَّ الصَّلَاةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتَابًا مَوْقُوتًا."

"बेशक नमाज़ मुसलमानों पर फ़र्ज़ है, अपने मुक़र्रर वक़्तों में।"

(4:103)

यह सिर्फ़ नमाज़ का मामला नहीं है, बल्कि ज़िंदगी के हर मामले में अहल-ए-ईमान से वक़्त की पाबंदी मतलूब है। वसी-तर एप्लीकेशन के एतबार से आयत का मतलब है—

"إِنَّ الحَيَاةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِينَ كِتَابًا مَوْقُوتًا."

"ज़िंदगी को उसके मुक़र्रर वक़्तों में अवेल (avail) करना मुसलमानों पर फ़र्ज़ है।"

नमाज़ इस्लाम की एक बुनियादी इबादत है। इसका रोज़ाना अदा करना हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है। वह रात और दिन के दरमियान पाँच बार मुक़र्रर औक़ात पर अदा की जाती है। जिस तरह नमाज़ की अदाएगी ज़रूरी है, उसी तरह उसके औक़ात की पाबंदी भी ज़रूरी है।

नमाज़ असलन एक इबादत है, मगर उसकी अदायगी में औक़ात की पाबंदी को शामिल कर दिया गया है। इस तरह नमाज़ गोया वक़्त की पाबंदी का एक सबक़ है, जो हर दिन लाज़िमी तौर पर अंजाम दिया जाता है। दूसरे अल्फ़ाज़ में यह कि नमाज़ इबादत के साथ टाइम मैनेजमेंट (time management) की एक लाज़िमी तर्बियत है। इस तरह नमाज़ी के रात और दिन को पाँच हिस्सों में तक़्सीम कर दिया गया

है— (1) फ़ज्र से लेकर ज़ुहर तक, (2) ज़ुहर से लेकर अस्र तक, (3) अस्र से लेकर मग़रिब तक, (4) मग़रिब से लेकर इशा तक, (5) इशा से लेकर फ़ज्र तक।

इंसान के पास सबसे क़ीमती चीज़ वक़्त है। वक़्त के सही इस्तेमाल का अंजाम कामयाबी है और वक़्त के ग़लत इस्तेमाल का अंजाम नाकामी है। नमाज़ की सूरत में टाइम मैनेजमेंट का सबक़ जो हर रोज़ दिया जाता है, वह इस दुनिया में कामयाब ज़िंदगी को यक़ीनी बनाता है। आदमी अगर अपने रात और दिन के औक़ात को इस तरह पाँच ख़ानों में तक़्सीम कर ले और रोज़ाना उसकी पाबंदी करे तो वह अपनी पूरी ज़िंदगी को भरपूर तौर पर इस्तेमाल कर सकता है और इस दुनिया में जो आदमी अपने मिले हुए औक़ात को मुनज़्ज़म (disciplined) तौर पर और भरपूर तौर पर इस्तेमाल करे, उसे कोई भी चीज़ आला कामयाबी तक पहुँचने से रोकने वाली नहीं।

टाइम मैनेजमेंट का मतलब, दूसरे लफ़्ज़ों में, लाइफ़ मैनेजमेंट है। ज़िंदगी को दुरुस्त तौर पर कैसे गुज़ारा जाए, उसका बहुत गहरा ताल्लुक़ इससे है कि आदमी अपने औक़ात को किस तरह इस्तेमाल करे। जिस आदमी के अंदर वक़्त के दुरुस्त इस्तेमाल का मिज़ाज पैदा हो जाए, वह इसी के साथ दूसरी बहुत-सी बुराइयों से बच जाएगा। वक़्त का सही इस्तेमाल आदमी को इस क़ाबिल बनाएगा कि वह अपने हासिल-शुदा ज़राए को दुरुस्त तौर पर इस्तेमाल करे।

मसलन टाइम मैनेजमेंट का मिज़ाज आदमी को सादा ज़िंदगी पर मजबूर कर देता है, क्योंकि सादा ज़िंदगी इख़्तियार न करने का मतलब यह है कि एक मामले में ज़रूरत से ज़्यादा तवज्जोह देना दूसरे मामले में कमी के हम-मआनी बन जाता है। इसी तरह तफ़रीह का मिज़ाज आदमी को यह नुक़सान पहुँचाता है कि उसके पास दूसरे ज़्यादा ज़रूरी कामों के लिए वक़्त ही न रहे। इसी तरह लज़ीज़ खानों का शौक़ आदमी

के लिए इस नुक़सान का सबब बनता है कि वह ज़िंदगी के दूसरे ज़रूरी पहलुओं के बारे में ग़ाफ़िल हो जाए।

हक़ीक़त यह है कि टाइम मैनेजमेंट अपने औक़ात की दुरुस्त तक़्सीम का दूसरा नाम है। जब आदमी के अंदर सही मआनों में टाइम मैनेजमेंट का एहसास पैदा हो जाए तो इसका लाज़िमी नतीजा यह होगा कि वह बहुत-सी ग़ैर-ज़रूरी या ग़ैर-अहम चीज़ों से बच जाएगा। मसलन फ़ुज़ूल-ख़र्ची, मस्नूई-तकल्लुफ़ात, ग़ैर-हक़ीक़ी मशाग़िल, वक़्ती तफ़रीहात वग़ैरह।

ज़िंदगी में सादगी की बेहद अहमियत है। सादगी बा-मक़सद इंसान का कल्चर है। ताहम सादगी के उसूल पर वही शख़्स क़ायम रह सकता है, जो टाइम मैनेजमेंट की अहमियत को समझ ले, वह अपने औक़ात के बारे में पूरी तरह हस्सास हो जाए। ऐसा आदमी जब भी सादगी के ख़िलाफ़ कोई काम करेगा तो उसकी यह हस्सासिय्यत उसे फ़ौरन रोक देगी। वह महसूस करेगा कि वह सादगी के ख़िलाफ़ तरीक़ा इस्तेमाल करके अपने आपको उस हलाकत में डाल रहा है कि उसके पास ज़्यादा अहम कामों के लिए न पैसा रहेगा और न वक़्त।

## सुलह बेहतर है

क़ुरआन की सूरह अन-निसा में शौहर और बीवी के दरमियान निज़ा (conflict) का ज़िक्र है और यह बताया गया है कि इस मसले का हल किस तरह तलाश किया जाए। इस सिलसिले में इरशाद हुआ है—

”وَإِنِ امْرَأَةٌ خَافَتْ مِنْ بَعْلِهَا نُشُوزًا أَوْ إِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا أَنْ يُصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا وَالصُّلْحُ خَيْرٌ وَأُحْضِرَتِ الْأَنْفُسُ الشُّحَّ وَإِنْ تُحْسِنُوا وَتَتَّقُوا فَإِنَّ اللَّهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُونَ خَبِيرًا.“

"और अगर किसी औरत को अपने शौहर की तरफ़ से बद-सुलूकी या बे-रुख़ी का अंदेशा हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं कि दोनों आपस में सुलह कर लें और सुलह बेहतर है और हिर्स इंसान की तबीअत में बसी हुई है और अगर तुम अच्छा सुलूक करो और ख़ुदा-तरसी से काम लो तो जो कुछ तुम करोगे, अल्लाह उससे बा-ख़बर है।" (4:128)

क़ुरआन की इस आयत में सुलह को बेहतर बताया गया है। यह बात ब-ज़ाहिर ख़ानदानी निज़ा के बारे में है, मगर इसका ताल्लुक़ पूरी ज़िंदगी से है। सुलह एक आला तदबीर है, जो हर निज़ाई मसले का वाहिद कामयाब हल है, चाहे वह निज़ाई मसला इन्फ़िरादी हो या इज्तिमाई, चाहे वह नैशनल हो या इंटरनेशनल।

जब भी दो आदमियों या दो फ़रीक़ों के दरमियान कोई निज़ा पेश आती है, तो इस निज़ा को हल तक न पहुँचने का सबब सिर्फ़ एक होता है और वह हिर्स है। इस मौक़े के लिहाज़ से हिर्स का मतलब यह है कि अमलन जो कुछ मिल रहा है, उस पर राज़ी न होना और उससे ज़्यादा चाहना। यही हिर्स या ज़्यादा चाहने का मिज़ाज निज़ा को ख़त्म नहीं होने देता। वह आख़िरकार बढ़कर बाक़ाएदा टकराव का सबब बन जाता है।

इसके मुक़ाबले में सुलह यह है कि बर-वक़्त जो कुछ अमली तौर पर मिल रहा है, उस पर राज़ी होकर मामले को ख़त्म कर देना। जब एक शख़्स सुलह के इस तरीक़े को इख़्तियार करे तो अपने आप निज़ा की हालत ख़त्म हो जाती है। इसके बाद यह नौबत ही नहीं आती कि निज़ा बढ़कर टकराव बन जाए। नतीजे के एतबार से देखिए तो हिर्स का तरीक़ा हमेशा मज़ीद नुक़सान का सबब बनता है और सुलह का तरीक़ा काम के मवाक़े खोलता है, जिसे इस्तेमाल करके मज़ीद तरक़्क़ी हासिल की जा सकती है।

सुलह कोई सादा बात नहीं। सुलह कोई बे-अमली (passive) की रविश नहीं। हक़ीक़त यह है कि सुलह अपने आपमें सबसे बड़ा अमल है। सुलह ब-ज़ाहिर मैदान-ए-मुक़ाबले से वापसी है, मगर अमलन वह आगे बढ़ने की सबसे बड़ी तदबीर है। जबकि कोई फ़र्द या गिरोह सुलह कर ले तो इसका मतलब यह होता है कि उसने अपने लिए एक ऐसा माहौल पा लिया, जिसके अंदर वह टकराव में वक़्त ज़ाए किए बग़ैर अपने पूरे वक़्त और ताक़त को अपने तामीरी मंसूबे में लगाए।

टकराव का तरीक़ा ज़िंदगी के सफ़र को रोक देता है। इसके बर-अक्स सुलह का तरीक़ा ज़िंदगी के सफ़र को रोके बग़ैर दोबारा मज़ीद इज़ाफ़े के साथ जारी कर देता है।

## इंतिहा-पसंदी नहीं

सूरह अन-निसा में जो अहकाम दिए गए हैं, उनमें से एक हुक्म यह है कि लोग ग़ुलू या इंतिहा-पसंदी का तरीक़ा इख़्तियार न करें। ग़ुलू या इंतिहा-पसंदी हर हाल में बुरी चीज़ है। चुनाँचे क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

"يَاأَهْلَ الْكِتَابِ لَا تَغْلُوا فِي دِينِكُمْ وَلَا تَقُولُوا عَلَى اللَّهِ إِلَّا الْحَقّ."

"ऐ अहल-ए-किताब, तुम अपने दीन में ग़ुलू न करो और अल्लाह के बारे में तुम कोई बात हक़ के सिवा न कहो।"

(4:171)

इस आयत में जिस रविश को ग़ुलू कहा गया है, वह वही है जिसे इंतिहा-पसंदी (extremism) कहा जाता है। इंतिहा-पसंदी ब-ज़ाहिर अच्छी नीयत के साथ होती है। इसके पीछे यह जज़्बा होता है कि किसी

मक़सद को मज़ीद क़ुव्वत के साथ हासिल किया जाए। इंतिहा-पसंदी दरअस्ल एतिदाल-पसंदी की उलट है।

इंतिहा-पसंदी की रविश ब-ज़ाहिर अच्छी नीयत के साथ की जाती है, मगर अमली नतीजे के एतबार से वह सख़्त नुक़सानदेह है। इस दुनिया में कोई सही या मुस्बत नतीजा हमेशा एतिदाल की रविश के ज़रिये हासिल होता है। इंतिहा-पसंदी की रविश सिर्फ़ नुक़सान पहुँचाती है, वह किसी फ़ायदे का सबब नहीं बन सकती। इसकी वजह यह है कि इस दुनिया में हर काम ख़ारजी अस्बाब (external factors) के ज़रिये अंजाम पाता है। ख़ारजी अस्बाब का लिहाज़ न करते हुए जो क़दम उठाया जाएगा, वह सिर्फ़ तबाही का सबब बनेगा।

इंतिहा-पसंदी और एतिदाल-पसंदी में यही फ़र्क़ है। इंतिहा-पसंद लोग सिर्फ़ अपनी ख़्वाहिश को जानते हैं, वे ख़ारजी अस्बाब से बे-ख़बर रहते हैं। इसके बर-अक्स एतिदाल-पसंद आदमी अपनी ख़्वाहिश के साथ ख़ारजी अस्बाब को भी अपने ध्यान में रखता है। यही वजह है कि इंतिहा-पसंद आदमी हमेशा नाकाम होता है और एतिदाल-पसंद आदमी हमेशा कामयाब रहता है।

ग़ुलू या इंतिहा-पसंदी एक ऐसी रविश है, जो फ़ितरत के क़वानीन के ख़िलाफ़ है। कायनात का मुताला बताता है कि फ़ितरत हमेशा एतिदाल और नियमित (gradual) तरीक़े से काम करती है काम करती है। यह उसूल जो ख़ारजी दुनिया में अमलन क़ायम है, वही उसूल इंसान के लिए भी मुफ़ीद है। फ़ितरत का निज़ाम अमल की ज़बान से इंसान को यह पैग़ाम दे रहा है कि तुम अपनी ज़िंदगी को कामयाब बनाना चाहते हो तो ग़ुलू को छोड़ दो और एतिदाल का तरीक़ा इख़्तियार करो।

# सच्चाई की दरयाफ़्त

सूरह अल-माइदा में एक वाक़ये का ज़िक्र इस तरह किया गया है—

"وَإِذَا سَمِعُوا مَا أُنْزِلَ إِلَى الرَّسُولِ تَرَى أَعْيُنَهُمْ
تَفِيضُ مِنَ الدَّمْعِ مِمَّا عَرَفُوا مِنَ الْحَقِّ."

"और जब वे इस कलाम को सुनते हैं, जो रसूल पर उतारा गया है, तो तुम देखोगे कि उनकी आँखों से आँसू जारी हो जाते हैं, इस सबब से कि उन्हें हक़ की पहचान हो गई।" (5:83)

एक और मौक़े पर इसी क़िस्म की बात इस तरह कही गई है—

"إِنَّمَا الْمُؤْمِنُونَ الَّذِينَ إِذَا ذُكِرَ اللَّهُ وَجِلَتْ
قُلُوبُهُمْ وَإِذَا تُلِيَتْ عَلَيْهِمْ آيَاتُهُ زَادَتْهُمْ إِيمَانًا."

"ईमान वाले तो वे हैं कि जब अल्लाह का ज़िक्र किया जाए तो उनके दिल दहल जाएँ और जब अल्लाह की आयतें उनके सामने पढ़ी जाएँ तो वे उनका ईमान बढ़ा देती हैं।" (8:2)

इन आयतों से एक अहम हक़ीक़त वाज़ेह होती है। वह यह कि सच्चाई सबसे बड़ी ताक़त है। कोई इंसान जब सच्चाई को दरयाफ़्त करता है तो उसकी पूरी शख़्सियत हिल जाती है। उसके अंदर एक ज़हनी इंक़िलाब पैदा हो जाता है। वह रूहानियत के समंदर में नहा उठता है। उसे एक नई रोशनी हासिल होती है, जो उसकी अंदरूनी शख़्सियत को आख़िरी हद तक मुनव्वर कर देती है। सच्चाई की दरयाफ़्त किसी इंसान के लिए सबसे बड़ा तजरबा है, इससे ज़्यादा बड़ा तजरबा इस दुनिया में और कोई नहीं।

इस मामले का दूसरा पहलू यह है कि जिस आदमी के पास सच्चाई हो, वह सबसे ज़्यादा ताक़तवर इंसान है। वह लोगों को अपनी तरफ़ माइल करने की ताक़त रखता है। वह लोगों के दिलों को जीत सकता है। वह हथियार के बग़ैर फ़ातेह बन सकता है। ब-ज़ाहिर कोई माद्दी ताक़त न रखते हुए भी वह सबसे बड़ी ताक़त का मालिक है। सच्चाई पाने वाले के लिए सच्चाई एक इंक़िलाब है और सच्चाई रखने वाले के लिए सच्चाई एक ताक़त का ख़ज़ाना है।

किसी शख़्स की ज़िंदगी में जो चीज़ सबसे ज़्यादा हलचल पैदा करने वाली है, वह सच्चाई की दरयाफ़्त है। किसी आदमी का यह एहसास कि मैंने सच्चाई को इसकी विशुद्ध सूरत में दरयाफ़्त कर लिया है, उसके अंदर फ़िक्र-ओ-ख़याल का तूफ़ान बरपा कर देता है। इस क़िस्म का वाक़या किसी आदमी के पूरे अंदरूनी वजूद को हिला देता है। वह उसे मामूली इंसान के दर्जे से उठाकर ग़ैर-मामूली इंसान बना देता है।

ख़ुदा का कलाम सिर्फ़ यह नहीं करता कि वह इंसान को कुछ बातों की ख़बर देता है। इससे बढ़कर यह कि वह इंसान की सोई हुई फ़ितरत को जगाता है। वह इंसान के अंदर पैदाइशी तौर पर मौजूद चिराग़ को रोशन कर देता है। वह इंसान के दाख़िली शुऊर को ख़ारजी हक़ीक़त से जोड़ देता है।

इंसान की फ़ितरत में पैदाइशी तौर पर मारिफ़त का एहसास रख दिया गया है, मगर इस पोटेंशियल एहसास को एक्टिवेट करने के लिए बाहरी मदद की ज़रूरत है। ख़ुदा का कलाम यही ख़ारजी रूहानी मदद फ़राहम करता है। ख़ुदा के कलाम से रहनुमाई पाने के बाद इंसान का हाल यह होता है कि गोया अँधेरा घर रोशन हो जाए या सूखा हुआ बाग़ लहलहा उठे।

# ज़मीन में फ़साद नहीं

सूरह अल-आराफ़ में इंसान को यह हुक्म दिया गया है कि वह ख़ुदा की ज़मीन में ख़ुदा के तख़्लीक़ी नक़्शे के मुताबिक़ रहे, वह इस रास्ते से न हटे। आयत के अल्फ़ाज़ यह हैं—

"فَأَوْفُوا الْكَيْلَ وَالْمِيزَانَ وَلَا تَبْخَسُوا النَّاسَ أَشْيَاءَهُمْ وَلَا تُفْسِدُوا فِي الْأَرْضِ بَعْدَ إِصْلَاحِهَا."

"पस नाप और तौल पूरा करो और मत घटाकर दो लोगों को उनकी चीज़ें और फ़साद न डालो ज़मीन में, इसकी इस्लाह के बाद।" (7:85)

ख़ुदा ने इस ज़मीन को एक इस्लाह-याफ़्ता ज़मीन के तौर पर पैदा किया है। यहाँ हर चीज़ अपनी मेयारी सूरत में है। मिसाल के तौर पर इंसान के सिवा जो दुनिया है, वहाँ अदल पूरी अदाएगी के उसूल पर क़ायम है। यह गोया एक इस्लाही निज़ाम है, जो ख़ुदा की ज़मीन पर क़ानून-ए-फ़ितरत के तहत क़ायम किया गया है। इंसान को भी अपनी ज़िंदगी में इसी इस्लाही उसूल को इख़्तियार करना है। इसके ख़िलाफ़ चलना गोया ज़मीन में फ़साद बरपा करना है। बनाव में बिगाड़ को दाख़िल करना है।

इस मामले का एक पहलू यह है कि ज़मीन में हर चीज़ को निहायत सही अंदाज़ (right proportion) में रखा गया है। सूरज की रोशनी, बारिश और हवा हर चीज़ में एक ख़ास बैलेंस क़ायम है। ज़मीन की सतह पर हरियाली और जंगलात सोचे-समझे अंदाज़े के मुताबिक़ उगाए गए हैं। इस ज़मीन पर इंसान के ज़िंदा रहने और तरक़्क़ी करने का राज़ यह है कि वह फ़ितरत के नक़्शे को बरक़रार रखे।

ज़मीन के अंदर फ़ितरत का जो निज़ाम है, वह गोया एक मॉडल है। इंसान को भी इसी मॉडल पर अपनी ज़िंदगी की तश्कील करनी है। इंसान अगर ऐसा करे कि वह फ़ितरत के इस मॉडल को अपनी ज़िंदगी में इख़्तियार न करे, इसी के साथ वह मज़ीद यह सरकशी करे कि वह फ़ितरत के निज़ाम को बदल दे, मसलन हवा में गैसों के फ़ितरी तनासुब को बिगाड़ दे तो गोया वह दोहरा जुर्म कर रहा है। जो लोग ऐसा करें, वे ख़ुदा के ग़ज़ब का शिकार होकर रह जाएँगे, वे कभी फ़लाह नहीं पा सकते।

## एराज़ का तरीक़ा

सूरह अल-आराफ़ में अहल-ए-ईमान को चंद अख़्लाक़ी नसीहतें की गई हैं। उनमें से एक नसीहत यह है कि बाहमी मामलात में एराज़ का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए। आयत के अल्फ़ाज़ यह हैं—

"خُذِ الْعَفْوَ وَأْمُرْ بِالْعُرْفِ وَأَعْرِضْ عَنِ الْجَاهِلِينَ."

"दरगुज़र करो, नेकी का हुक्म दो और नादानों से एराज़ करो।" (7:199)

इज्तिमाई ज़िंदगी में बार-बार ऐसा होता है कि एक शख़्स और दूसरे शख़्स के दरमियान इख़्तिलाफ़ पैदा होता है। एक-दूसरे के दरमियान बहस और तकरार शुरू हो जाती है। ऐसे मौक़े पर दुरुस्त तरीक़ा क्या है? वह यह है कि अगर सामने वाला संजीदा हो, वह मसले को हक़ीक़ी तौर पर समझना चाहता हो तो ऐसी सूरत में दलील के ज़रिये उसके सामने अपना मौक़िफ़ रखना चाहिए और अगर वह संजीदा न हो तो ऐसी हालत में दलील और लॉजिक उसे मुतास्सिर न कर सकेंगे। वह हर दलील के जवाब में कुछ ख़ुद-साख़्ता अल्फ़ाज़ बोल देगा और फिर यह समझेगा कि उसने पेश-कर्दा दलील को रद्द कर दिया है।

इस दूसरी सूरत में दुरुस्त तरीक़ा यह है कि एराज़ (avoidance) के उसूल पर अमल किया जाए। एराज़ का मक़सद दरअस्ल यह है कि आदमी को उसके ज़मीर के हवाले कर दिया जाए। ऐन मुमकिन है कि जो मक़सद दलील के ज़रिये पूरा नहीं हुआ, वह ज़मीर की ख़ामोश आवाज़ के ज़रिये पूरा हो जाए।

निज़ा को ख़त्म करने के लिए भी सबसे ज़्यादा मुअस्सिर ज़रिया एराज़ है। अमली निज़ा के वक़्त अगर एराज़ का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए तो निज़ा अपने पहले ही मरहले में ख़त्म हो जाएगी। जबकि एराज़ न करने का नुक़सान यह है कि निज़ा बढ़ती रहे, यहाँ तक कि छोटी बुराई (lesser evil) की जगह बड़ी बुराई (greater evil) का सामना करना पड़े।

एराज़ कोई सादा चीज़ नहीं, यह एक आला अख़्लाक़ी रविश है। यह एक आला इंसानी तरीक़ा है। कोई शख़्स जब इश्तिआल की सूरत पेश आने पर भड़क उठे तो वह साबित करता है कि वह एक पस्त इंसान है। इसके बर-अक्स जो आदमी इश्तिआल की सूरत पेश आने पर न भड़के, वह ऐसा करके यह साबित कर रहा है कि वह बुलंद इंसानी मर्तबे पर है। वह सही मआनों में आला इंसान कहे जाने का मुस्तहिक़ है।

## यक़ीन-ओ-एतिमाद

क़ुरआन की सूरह अत-तौबा में पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का एक वाक़या बयान किया गया है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम मक्का में पैदा हुए। वहाँ उनकी सख़्त मुख़ालिफ़त हुई। उसके बाद वह 622 ई० में मक्का से मदीना चले गए। यह एक बेहद ख़तरनाक

सफ़र था। दो हफ़्ते के इस सफ़र के दौरान एक-बार वह एक ग़ार (सौर) में छिपे हुए थे। आपके मुख़ालिफ़ीन जो आपकी तलाश में निकले थे, वे तलवारें लिये हुए ग़ार के मुँह तक पहुँच गए। उस वक़्त आपके वाहिद साथी अबू बक्र सिद्दीक़ थे। उन्होंने यह मंज़र देखा तो कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, वे तो यहाँ भी पहुँच गए। इसके जवाब में पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने जो कहा, उसे क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

"إِذْ يَقُولُ لِصَاحِبِهِ لَا تَحْزَنْ إِنَّ اللَّهَ مَعَنَا."

"ग़म न करो, अल्लाह हमारे साथ है।" (9:40)

मौजूदा ज़िंदगी में बार-बार ऐसा होता है कि इंसान किसी ऐसी सूरत-ए-हाल में मुब्तला हो जाता है, जहाँ वह अपने आपको बे-यार-ओ-मददगार समझने लगता है। इस हालत में उसे ज़रूरत होती है कि कोई ऐसी ज़ात हो, जिस पर वह यक़ीन कर सके। जो उसकी कमी को पूरा कर सके।

ख़ुदा की ज़ात पर यक़ीन आदमी को यही अथाह सहारा देता है। ख़ुदा तमाम ताक़तों का मालिक है। इसलिए ख़ुदा पर यक़ीन आदमी को एक ऐसी हिम्मत देता है, जो कभी न टूटे। ख़ुदा का अक़ीदा किसी आदमी के लिए हौसले का सबसे बड़ा ख़ज़ाना है। जिस आदमी को ख़ुदा की ज़ात पर पूरा यक़ीन हो जाए, वह किसी भी हाल में बे-हौसला नहीं होगा। वह किसी भी हाल में इस एहसास से दो-चार नहीं होगा कि उसका रास्ता बंद है। वह हर हाल में आगे बढ़ता चला जाएगा। ज़िंदगी की आख़िरी मंज़िल तक पहुँचने में कोई भी चीज़ उसके लिए रुकावट नहीं बनेगी।

ख़ुदा का अक़ीदा इंसान की अंदरूनी सलाहियतों को जगा देता है। वह इंसान के अंदर एक नया अज़्म पैदा कर देता है। वह उसकी अंदरूनी क़ुव्वतों को ऐक्टिव करके एक बे-हौसला इंसान को बा-हौसला इंसान बना देता है।

# बुराई और भलाई

क़ुरआन में ज़िंदगी का एक क़ानून बताया गया है। इस क़ानून का ताल्लुक़ हर फ़र्द से है, मर्द से भी और औरत से भी। आम इंसान से भी और ख़ास इंसान से भी। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

"إِنَّ الْحَسَنَاتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّئَاتِ ذَلِكَ ذِكْرَى لِلذَّاكِرِينَ."

"बेशक नेकियाँ दूर करती हैं बुराइयों को। यही याददिहानी है याददिहानी हासिल करने वालों के लिए।" (11:114)

इंसान पत्थर नहीं है। इंसान से मुख़्तलिफ़ क़िस्म की ग़लतियाँ हो जातीं हैं। बार-बार ऐसा होता है कि एक मर्द या एक औरत से क़ोई ग़लती हो गई। बाद में उन्हें एहसास हुआ कि उनसे ग़लती हो गई। अब सवाल यह है कि इस ग़लती की तलाफ़ी किस तरह की जाए। क़ुरआन की मज़्कूरा आयत में ग़लती की तलाफ़ी के इसी उसूल को बताया गया है।

आदमी जब कोई ग़लती करता है तो इसका सबसे पहला असर यह होता है कि उसके दिल के अंदर अच्छे और बुरे के बारे में हस्सासियत (sensitivity) कम हो जाती है और अगर आदमी बार-बार वही बुराई करता रहे तो उसकी हस्सासियत पूरी तरह ख़त्म हो जाएगी, जबकि यही हस्सासियत बुराई के ख़िलाफ़ सबसे बड़ा चेक (check) है। ऐसी हालत में हस्सासियत का ख़त्म होना इंसान का गोया हैवान बन जाना है। इस मसले का हल सिर्फ़ यह है कि आदमी बुराई करने के बाद भलाई करे। वह अपनी ग़लती का खुला एतिराफ़ करे। वह इस बात का फ़ैसला करे कि वह आइंदा ऐसी ग़लती नहीं करेगा। जो आदमी ऐसा करे, वह अपने दिल को दोबारा पाक कर लेगा। उसके दिल की हस्सासियत दोबारा उसकी तरफ़ लौट आएगी।

बुराई का दूसरा असर वह है, जिसका ताल्लुक़ समाज से है। समाज के एक फ़र्द का बुराई करना ऐसा ही है, जैसे पुर-सुकून पानी में पत्थर फेंकना। चुनाँचे एक फ़र्द का बुराई करना पूरे समाज को मुतास्सिर करने का सबब बन जाता है। ऐसी हालत में अपनी बुराई की तलाफ़ी करना गोया पूरे समाज को बिगाड़ से बचाना है। यह फ़र्द के ऊपर एक समाजी फ़र्ज़ है कि वह अपनी बुराई के अंजाम से समाज को बचाए।

## नफ़्स-ए-अम्मारा, नफ़्स-ए-लव्वामा

क़ुरआन में बताया गया है कि हर इंसान के अंदर दो मुख़्तलिफ़ क़िस्म की 'फैकल्टीज़' (faculties) हैं— एक नफ़्स-ए-अम्मारा (यूसुफ़, 12:53) और दूसरा नफ़्स-ए-लव्वामा (अल-क़ियामा, 75:2)। इंसान के अक्सर आमाल इन्ही दोनों फैकल्टीज़ के ज़ेर-ए-असर अंजाम पाते हैं, चाहे वह अमल फ़र्द से ताल्लुक़ रखता हो या गिरोह से।

क़ुरआन की इस आयत में नफ़्स-ए-अम्मारा से मुराद बुराई का हुक्म देने वाला नफ़्स है। इससे मुराद वही चीज़ है, जिसे अना (ego) कहा जाता है। इसके मुक़ाबले में नफ़्स-ए-लव्वामा से मुराद मलामत करने वाला नफ़्स है। इससे मुराद वही चीज़ है, जिसे ज़मीर (conscience) कहा जाता है।

इज्तिमाई ज़िंदगी का उसूल यह है कि जब दो आदमियों या दो पार्टियों के दरमियान कोई मसला पेश आए तो उस वक़्त सारा फ़ैसला इस पर निर्भर करता है कि आदमी की ईगो को जगाया गया है या उसके ज़मीर को जगाया गया है। अगर आप आदमी के ईगो को जगाएँ तो इसका नतीजा बिगाड़ की सूरत में ज़ाहिर होगा।

When one's ego is touched it turns into super ego and the result is breakdown.

इसके बर-अक्स अगर आदमी के ज़मीर को टच (touch) किया जाए तो उसके अंदर एतिराफ़ और शर्मिंदगी का जज़्बा जाग जाएगा और फ़ैसला इंसाफ़ के मुताबिक़ ज़ाहिर होगा।

इसका मतलब यह है कि जब भी आपका मामला किसी शख़्स से पेश आए या उसके साथ कोई निज़ा क़ायम हो जाए तो उस वक़्त गोया नतीजा मुकम्मल तौर पर ख़ुद आपके इख़्तियार में होता है। अगर आप अपनी किसी इश्तिआल-अंगेज़ कार्रवाई से सामने वाले के ईगो (नफ़्स-ए-अम्मारा) को भड़का दें तो इसका नतीजा यह होगा कि सामने वाला आपके लिए मुख़ालिफ़ के रूप में उभरेगा। वह आपकी इश्तिआल-अंगेज़ी का जवाब नफ़रत और तशद्दुद की सूरत में देगा। इसके बर-अक्स अगर आप इख़्तिलाफ़-ओ-निज़ा के मौक़े पर सब्र-ओ-एराज़ का तरीक़ा इख़्तियार करें तो ऐसी सूरत में सामने वाले की तरफ़ से आपको बिलकुल मुख़्तलिफ़ क़िस्म का तजरबा पेश आएगा। अब ऐसा होगा कि ब-ज़ाहिर जो आदमी आपका मुख़ालिफ़ बना हुआ था, वह आपका दोस्त बन जाएगा। इसके बाद आप और उस दूसरे इंसान के दरमियान एक नॉर्मल फ़िज़ा क़ायम हो जाएगी, जिसमें कोई नया मसला पैदा हुए बग़ैर आपका मामला हल हो सकता है।

हक़ीक़त यह है कि इस दुनिया में दुश्मन और दोस्त दोनों ख़ुद आपकी पैदावार हैं। आपका ख़ुद अपना रवैया किसी को अपना दुश्मन बना देता है। इसी तरह ख़ुद आपका दूसरा रवैया उसे आपका दोस्त बना देता है। अब यह आपके अपने इख़्तियार में है कि आप सामने वाले को अपना दुश्मन बनाते हैं या अपना दोस्त।

# इंतिज़ार की पॉलिसी

क़ुरआन की सूरह यूसुफ़ में एक पैग़ंबर का वाक़या बयान हुआ है। उनके ऊपर बहुत-से सख़्त हालात पेश आए, मगर वह तक़वा और सब्र पर क़ायम रहे, यहाँ तक कि ख़ुदा ने उन्हें कामयाबी अता फ़रमाई। इस वाक़ये को बयान करने के बाद क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

"إِنَّهُ مَنْ يَتَّقِ وَيَصْبِرْ فَإِنَّ اللَّهَ لَا يُضِيعُ أَجْرَ الْمُحْسِنِينَ."

"जो शख़्स डरे और सब्र करे तो अल्लाह नेक काम करने वालों का अज्र ज़ाए नहीं करता।" (12:90)

क़ुरआन की इस आयत में फ़ितरत का एक क़ानून बताया गया है। वह क़ानून यह है कि इस दुनिया में हर शाम के बाद सुबह आती है। ऐसा होना लाज़िमी है। आदमी को चाहिए कि जब उस पर अँधेरी रात आए तो घबरा न उठे, बल्कि इंतिज़ार की पॉलिसी इख़्तियार करे। अगर वह ऐसा करे तो जल्द ही वह देखेगा कि उसके ऊपर सूरज तुलू हुआ और हर तरफ़ उजाला फैल गया।

तक़वा यह है कि आदमी ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए निज़ाम पर राज़ी रहे और सब्र का मतलब यह है कि वह इंतिज़ार की पॉलिसी इख़्तियार करे। यही इस दुनिया में कामयाबी का वाहिद रास्ता है। इसके सिवा कोई और रास्ता नहीं, जिस पर चलकर आदमी अपनी मंज़िल पर पहुँच सकता हो।

क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ इस दुनिया में कोई नाकामी अब्दी नाकामी नहीं। हर नाकाम 'हाल' के साथ एक कामयाब 'मुस्तक़बिल' जुड़ा हुआ है। इंसान को चाहिए कि वह बे-सब्री करके इस निज़ाम को न बिगाड़े। वह सब्र की पॉलिसी इख़्तियार करके क़ुदरत के अगले फ़ैसले

का इंतिज़ार करता रहे। मौजूदा दुनिया में इंसान के लिए यही पॉलिसी मुफ़ीद भी है और यही पॉलिसी मुमकिन भी।

फ़ितरत के इसी उसूल को एक मशहूर कहावत में इस तरह बयान किया गया है — 'इंतिज़ार करो और देखो' (wait and see)। यह एक आलमी तजरबा है, जो इस कहावत की सूरत में ढल गया है। इस मामले में यही मज़हबी तालीम भी है और यही फ़ितरत का तक़ाज़ा भी।

## क़ौमों का उरूज-ओ-ज़वाल

क़ुरआन की सूरह अर-रअद में बताया गया है कि क़ौमों के उरूज-ओ-ज़वाल का क़ानून क्या है। यह फ़ितरत के एक उसूल पर मबनी है, जिसका ज़िक्र क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में किया गया है—

"إِنَّ اللَّهَ لَا يُغَيِّرُ مَا بِقَوْمٍ حَتَّى يُغَيِّرُوا مَا بِأَنْفُسِهِمْ"

"बेशक अल्लाह किसी क़ौम की हालत को नहीं बदलता, जब तक कि वह उसे न बदल डालें, जो उनके जी (नफ़्स) में है।"

(13:11)

क़ुरआन की इस आयत में 'क़ौम' से मुराद क़ौम की इज्तिमाई हालत है और 'नफ़्स' से मुराद क़ौम की इन्फ़िरादी हालत है। इसका मतलब यह है कि किसी क़ौम की इज्तिमाई तरक़्क़ी का राज़ यह है कि इसके अफ़राद के अंदर इंसानी सिफ़ात (human qualities) आला दर्जा में मौजूद हो। इसके बर-अक्स किसी क़ौम का इज्तिमाई ज़वाल उस वक़्त होता है, जबकि उसके अफ़राद के अंदर आला इंसानी सिफ़ात बाक़ी न रहे। फ़र्द की हालत ही पर तरक़्क़ी निर्भर करती है और पतन भी।

फ़ितरत का यह क़ानून बताता है कि कोई क़ौम अगर गिरावट का

शिकार हो जाए तो उसे दोबारा उठाने का अमल कहाँ से शुरू करना चाहिए। इसका वाहिद कारगर तरीक़ा यह है कि अफ़राद के अंदर फिर से शुऊरी बेदारी (intellectual awareness) लाई जाए। अफ़राद के सीरत-ओ-किरदार को बुलंद किया जाए। अफ़राद के अंदर इत्तिहाद और इंसानियत की रूह को जगाया जाए।

क़ौमी इस्लाह का यही वाहिद तरीक़ा है। इसके बर-अक्स अगर क़ौमी इस्लाह के नाम पर अवामी तहरीक (mass movement) चलाई जाए, जलसों और अवामी तक़रीरों के ज़रिये भीड़ को मुख़ातब किया जाए तो ऐसे अमल का कोई मतलूब नतीजा हरगिज़ निकलने वाला नहीं। इस क़ानून के मुताबिक़ किसी क़ौम की ख़ारजी हालत हमेशा उसकी दाख़िली हालत का नतीजा होती है। ऐसी हालत में किसी क़ौम के ज़वाल के वक़्त उसकी इस्लाह का आग़ाज़ दाख़िली (internal) मेहनत से होगा, न कि ख़ारजी (external) कारवाईयों से।

## इस्तिहकाम का राज़

सूरह अर-रअद में उस क़ानून-ए-फ़ितरत को बताया गया है, जिसके तहत इस दुनिया में किसी को पायेदारी और मज़बूती हासिल होती है। यह नफ़ा-बख़्शी (giving spirit) है। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

"أَنْزَلَ مِنَ السَّمَاءِ مَاءً فَسَالَتْ أَوْدِيَةٌ بِقَدَرِهَا فَاحْتَمَلَ السَّيْلُ زَبَدًا رَّابِيًا وَمِمَّا يُوقِدُونَ عَلَيْهِ فِي النَّارِ ابْتِغَاءَ حِلْيَةٍ أَوْ مَتَاعٍ زَبَدٌ مِثْلُهُ كَذَلِكَ يَضْرِبُ اللَّهُ الْحَقَّ وَالْبَاطِلَ فَأَمَّا الزَّبَدُ فَيَذْهَبُ جُفَاءً وَأَمَّا مَا يَنْفَعُ النَّاسَ فَيَمْكُثُ فِي الْأَرْضِ كَذَلِكَ يَضْرِبُ اللَّهُ الْأَمْثَالَ."

"अल्लाह ने आसमान से पानी उतारा। फिर नाले अपनी अपनी मिक़दार के मुवाफ़िक़ बह निकले। फिर सैलाब ने उभरते झाग को उठा लिया और इसी तरह का झाग उन चीज़ों में भी उभर आता है, जिसे लोग ज़ेवर या अस्बाब बनाने के लिए आग में पिघलाते हैं। इस तरह अल्लाह हक़ और बातिल की मिसाल बयान करता है। पस झाग तो सूखकर जाता रहता है और जो चीज़ इंसानों को नफ़ा पहुँचाने वाली है, वह ज़मीन में ठहर जाती है। अल्लाह इसी तरह मिसालें बयान करता है।" (13:17)

इस आयत में फ़ितरत की दो मिसालों के ज़रिये एक हक़ीक़त को वाज़ेह किया गया है। वह हक़ीक़त यह है कि समाजी और क़ौमी ज़िंदगी में एक के मुक़ाबले में दूसरे के लिए पायेदारी और मज़बूती का राज़ क्या है। वह राज़ सिर्फ़ एक है और वह नफ़ा-बख़्शी है। इस दुनिया में हमेशा ऐसा होता है कि जो गिरोह देने वाला गिरोह (giver group) हो, उसे दूसरों के मुक़ाबले में जमाव और तरक़्क़ी हासिल हो और जो गिरोह लेने वाला गिरोह (taker group) बन जाए, वह दूसरों के मुक़ाबले में मग़्लूब होकर रह जाए।

इस क़ानून की रोशनी में देखा जाए तो महरूमी के वक़्त मुतालबे की मुहिम सरासर बे-मानी है, क्योंकि इस दुनिया में किसी को मुतालबे से कुछ नहीं मिल सकता। इस दुनिया में जब भी किसी को कुछ मिलेगा तो वह सिर्फ़ देने की क़ीमत पर मिलेगा। इस मामले में मौजूदा दुनिया का क़ानून एक लाईन में यह है— जितना देना, उतना पाना।

# शुक्र से इज़ाफ़ा

सूरह इब्राहीम में फ़ितरत का एक क़ानून बताया गया है। वह यह कि ख़ुदा के बनाए हुए क़ानून के मुताबिक़ इस दुनिया में शुक्र करने से इज़ाफ़ा होता है। यह क़ानून क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बताया गया है—

"وَإِذْ تَأَذَّنَ رَبُّكُمْ لَئِنْ شَكَرْتُمْ لَأَزِيدَنَّكُمْ وَلَئِنْ كَفَرْتُمْ إِنَّ عَذَابِي لَشَدِيدٌ."

"और जब तुम्हारे रब ने तुम्हें आगाह कर दिया कि अगर तुम शुक्र करोगे तो मैं तुम्हें ज़्यादा दूँगा और अगर तुम नाशुक्री करोगे तो मेरा अज़ाब बड़ा सख़्त है।" (14:7)

क़ुरआन की इस आयत में जो बात कही गई है, वह कोई पुर-असरार बात नहीं। वह मालूम अस्बाब के तहत पेश आने वाला एक वाक़या है। यह वाक़या हर एक के साथ पेश आता है— फ़र्द के लिए फ़र्द की हैसियत से और गिरोह के लिए गिरोह की हैसियत से।

शुक्र दरअस्ल एतिराफ़ (acknowledgement) का नाम है। इंसान की निस्बत से जिस चीज़ को एतिराफ़ कहा जाता है, उसी को ख़ुदा की निस्बत से शुक्र कहा गया है। शुक्र यह है कि ख़ुदा ने आदमी को जो कुछ दिया है, दिल की गहराइयों के साथ वह उसका एतिराफ़ करे।

यह शुक्र या एतिराफ़ कोई सादा चीज़ नहीं। इसका रिश्ता निहायत गहराई के साथ आदमी की नफ़्सियात से जुड़ा हुआ है। शुक्र करने वाले आदमी के अंदर तवाज़ो, हक़ीक़त-पसंदी, एतिराफ़-ए-हक़, संजीदगी और ज़िम्मेदारी का एहसास पैदा होता है। ये एहसासात उसके किरदार में नुमायाँ होते हैं, जो उसे तरक़्क़ी की तरफ़ ले जाते हैं।

इसके बर-अक्स मामला नाशुक्री का है। नाशुक्री से आदमी के अंदर सरकशी, हक़ीक़त से एराज़, बे-एतिराफ़ी, ग़ैर-संजीदगी और ग़ैर-ज़िम्मेदारी जैसी पस्त सिफ़ात पैदा होती हैं और जिस आदमी के अंदर इस क़िस्म की पस्त सिफ़ात पाई जाए, उसकी तरक़्क़ी यक़ीनी तौर पर रुक जाएगी, हत्ता कि मुमकिन है कि वह मिले हुए को भी खो दे।

## सबक़ लेने वाले

सूरह अल-हिज्र में बाज़ तारीख़ी वाक़यात का ज़िक्र किया गया है। ये वाक़यात क़ौमों के उरूज-ओ-ज़वाल की दास्तान को बताते हैं। इन तारीख़ी वाक़यात की तरफ़ इशारा करते हुए क़ुरआन में कहा गया है—

"إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَاتٍ لِّلْمُتَوَسِّمِينَ."

"बेशक इसमें निशानियाँ हैं 'मुतवस्सिमीन' के लिए।" (15:75)

अरबी ज़बान में 'वस्म' के मआने अलामत के होते हैं। 'सिम' के मानी हैं, किसी चीज़ की हक़ीक़त को उसकी अलामत और क़राइन (clues) से मालूम करना। अपनी अक़्ल-ओ-फ़रासत से अस्ल बात को जान लेना। मसलन आप किसी को देखकर कहें—

"توسّمتُ فيه الخير يا توسّمت فيه الشر."

"उसकी ज़ाहिरी हालत को देखकर मैंने अंदाज़ा किया कि उसके अंदर ख़ैर का माद्दा है या यह कि उसके अंदर शर का माद्दा है।"

जिस आदमी के अंदर यह सलाहियत हो, उसे 'मुतवस्सिम' कहा जाता है। यही वह सलाहियत है, जो किसी आदमी को दानिशमंद बनाती है। जिन लोगों के अंदर यह सलाहियत हो, वे हर मुशाहदे और हर तजरबे से सबक़ लेते रहेंगे। वे किसी वाक़ये के सिर्फ़ ज़ाहिर को नहीं

देखते, बल्कि उनके पीछे छिपी हक़ीक़त को समझ लेते हैं। वे ज़ाहिरी वाक़यात में इसके मानवी पहलुओं को दरयाफ़्त करेंगे। वे किसी चीज़ को सिर्फ़ उसके ज़ाहिर (face-value) पर नहीं लेंगे, बल्कि वे उसकी गहराई तक उतरकर उसकी अस्ल हक़ीक़त को मालूम करेंगे।

यह सलाहियत आदमी को इस क़ाबिल बनाती है कि वह महरूमी के वाक़ये को तजरबे में ढाल ले। वह मालूमात को सबक़ बना सके। वह हाल में मुस्तक़बिल को देख ले। यही वह सलाहियत है, जो किसी आदमी को मुदब्बिर और मुफ़क्किर (thinker) बनाती है। इस सलाहियत के बग़ैर एक आदमी सिर्फ़ आलिम है, मगर इस सलाहियत के साथ वह एक तख़्लीक़ी (creative) आलिम बन जाता है।

## मनी मैनेजमेंट

क़ुरआन की सूरह बनी-इस्राईल में बताया गया है कि तुम अपनी कमाई को किस तरह और किस मद में ख़र्च करो। इस सिलसिले में क़ुरआन की दो आयतें यह हैं—

"وَآتِ ذَا الْقُرْبَى حَقَّهُ وَالْمِسْكِينَ وَابْنَ السَّبِيلِ وَلَا تُبَذِّرْ تَبْذِيرًا إِنَّ الْمُبَذِّرِينَ كَانُوا إِخْوَانَ الشَّيَاطِينِ وَكَانَ الشَّيْطَانُ لِرَبِّهِ كَفُورًا."

"और रिश्तेदार को उसका हक़ दो और मिस्कीन को व मुसाफ़िर को और फ़ुज़ूल-ख़र्ची न करो। बेशक फ़ुज़ूल-ख़र्ची करने वाले शैतान के भाई हैं और शैतान अपने रब का बड़ा नाशुक्रा है।" (17:26-27)

क़ुरआन की इस आयत में जो हुक्म दिया गया है, इसे दूसरे लफ़्ज़ों में 'मनी मैनेजमेंट' (money management) कहा जा सकता है यानी अपनी कमाई को हक़ीक़ी ज़रूरत के मुताबिक़ बा-उसूल अंदाज़ में

ख़र्च करना और बे-फ़ायदा कामों में अपना पैसा ख़र्च करने से बचना। फ़ुज़ूल-ख़र्ची के मामले में क़ुरआन इतना ज़्यादा संजीदा है कि उसने फ़ुज़ूल-ख़र्ची को एक शैतानी फ़ेल क़रार दिया है।

पैसा कमाना जिस तरह एक काम है, उसी तरह पैसा ख़र्च करना भी एक काम है। सही तरीक़ा यह है कि आदमी अपने पैसे को दुरुस्त तौर पर ख़र्च करे। वह अपने पैसे को ज़ाए न करे। पैसे को दुरुस्त तौर पर ख़र्च करना यह है कि ख़र्च की ज़रूरी मद (need based expenses) और ग़ैर-ज़रूरी मद (desire based expenses) में फ़र्क़ किया जाए। पैसे को सिर्फ़ ज़रूरी मद में ख़र्च किया जाए और ग़ैर-ज़रूरी मद में पैसे को ख़र्च करने से मुकम्मल तौर पर परहेज़ किया जाए।

क़ुरआन की इस आयत में फ़ुज़ूल-ख़र्ची को 'तब्ज़ीर' कहा गया है यानी पैसे को ग़ैर-ज़िम्मेदाराना तौर पर बिखेरना। इस क़िस्म की रविश एक तबाहकुन रविश है। पैसा किसी को इसलिए मिलता है कि वह इससे अपनी हक़ीक़ी ज़रूरतों को पूरा करे और जो पैसा अपनी हक़ीक़ी ज़रूरत से ज़्यादा हो, उसे समाज की तामीर और तरक़्क़ी में ख़र्च करे। यही ख़र्च की सही सूरत है और इसी में फ़र्द और समाज की तरक़्क़ी का राज़ छिपा है।

क़ुरआन में माल को 'क़ियाम' (4:5) कहा गया है यानी ज़िंदगी का ज़रिया, दुनिया में इंसान के क़ियाम-ओ-बक़ा (survival) का सामान। हक़ीक़त यह है कि माल ज़िंदगी की तामीर के सिलसिले में बेहद अहमियत रखता है। माल हर इंसान के पास ख़ुदा की एक अमानत है। जो लोग माल को ग़ैर-ज़िम्मेदाराना तौर पर ख़र्च करें, वे ब-यक वक़्त दो संगीन बुराइयों में मुब्तला हैं। एक एतबार से वे एक मुक़द्दस अमानत में ख़यानत कर रहे हैं और दूसरे एतबार से वे ख़ुद अपनी ज़ाती तामीर के मामले में बदतरीन अंजाम का शिकार हैं।

# इंसानी इल्म की महदूदियत

सूरह बनी-इस्राईल में कुछ लोगों के एक सवाल का जवाब देते हुए एक फ़ितरी इंसानी हक़ीक़त का ऐलान किया गया है। इस सिलसिले में क़ुरआन का मुताल्लिक़ा बयान यह है—

"وَيَسْأَلُونَكَ عَنِ الرُّوحِ قُلِ الرُّوحُ مِنْ أَمْرِ رَبِّي وَمَا أُوتِيتُمْ مِنَ الْعِلْمِ إِلَّا قَلِيلًا."

"और वे तुमसे रूह के मुताल्लिक़ पूछते हैं। कहो कि रूह मेरे रब के हुक्म से है और तुम्हें सिर्फ़ इल्म-ए-क़लील दिया गया है।" (17:85)

क़ुरआन की इस आयत से मालूम होता है कि इंसान अपनी महदूदियत (limitations) की बिना पर इल्म-ए-कुल तक नहीं पहुँच सकता। इल्म-ए-कुल बतौर वाक़या मौजूद है, मगर इंसान की ज़ाती महदूदियत की बिना पर वहाँ तक उसकी पहुँच मुमकिन नहीं। इसका मतलब यह है कि इंसान को चाहिए कि वह हक़ीक़त-पसंदी से काम ले। वह महदूद इल्म की बुनियाद पर सच्चाई को पहुँचने की कोशिश करे।

अगर इंसान ने यह इसरार किया कि हर चीज़ को बराह-ए-रास्त उसके मुशाहिदे (observation) में आना चाहिए तो वह सिर्फ़ कन्फ़्यूज़न का शिकार होकर रह जाएगा, क्योंकि कुल हक़ीक़त का बतौर मुशाहिदा इल्म में आना इस दुनिया में मुमकिन नहीं।

यह एक अहम तालीम है। यही वाहिद चीज़ है, जो आदमी को कन्फ़्यूज़न से बचाने वाली है। जो लोग यह चाहें कि हर चीज़ उनके बराह-ए-रास्त मुशाहिदे में आए, उसी वक़्त वे इसे मानेंगे तो ऐसे लोग हमेशा बे-यक़ीनी का शिकार रहेंगे। इस दुनिया में यक़ीन के दर्जे तक

पहुँचना सिर्फ़ उस इंसान के लिए मुमकिन है, जो हक़ीक़त-पसंदी का तरीक़ा इख़्तियार करते हुए ऐसा करे यानी वह जुज़ई इल्म तक बराह-ए-रास्त पहुँच हासिल करने के बाद यह एतिराफ़ कर ले कि इसके बाद उसके बराह-ए-रास्त इल्म की हद आ गई और बिल-वास्ता इल्म की हद शुरू हो गई है। यही वाहिद तरीक़ा है, जो किसी आदमी को यक़ीन का दर्जा अता कर सकता है।

यह ऐन वही उसूल है, जिसे मौजूदा साइंस में अब एक हक़ीक़त के तौर पर मान लिया गया है। अब अहल-ए-इल्म के दरमियान यह मानो एक उसूल बन चुका है कि साइंस हमें सच्चाई का सिर्फ़ एक हिस्सा अता करती है।

"Science gives us but a partial knowledge of reality."

## अतराफ़-ए-अर्ज़, मरकज़-ए-अर्ज़

सूरह अल-अंबिया में वक़्त के उन बा-इख़्तिदार लोगों को ख़िताब किया गया है, जो पैग़ंबर की मुख़ालिफ़त कर रहे थे और उन्हें ज़ेर करना चाहते थे। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

"أَفَلَا يَرَوْنَ أَنَّا نَأْتِي الْأَرْضَ نَنْقُصُهَا مِنْ أَطْرَافِهَا أَفَهُمُ الْغَالِبُونَ"

"क्या वे नहीं देखते कि हम ज़मीन को इसके अतराफ़ से घटाते चले जा रहे हैं, फिर क्या यही लोग ग़ालिब रहने वाले हैं।" (21:44)

क़ुरआन की इस आयत से फ़ितरत का एक उसूल मालूम होता है। वह उसूल यह है कि आस-पास के काम करते हुए मरकज़ तक पहुँच हासिल करना। यह किसी के ख़िलाफ़ अमल का सबसे ज़्यादा

कामयाब तरीक़ा है। मुक़ाबले की सूरत में अगर ऐसा किया जाए कि शुरू ही में बराह-ए-रास्त इक़्तिदार के मरकज़ से टकराव शुरू कर दिया जाए तो यह सख़्त नुक़सान का बाइस होगा। इस तरीक़-ए-कार में फ़ायदे की उम्मीद कम और नुक़सान की उम्मीद ज़्यादा है।

अमली तौर पर ज़्यादा असरदार तदबीर यह है कि अतराफ़ के शोबों से अपनी जद्द-ओ-जहद का आग़ाज़ किया जाए। अतराफ़ से चलकर मरकज़ तक पहुँचा जाए। ग़ैर-सियासी इदारों में पहुँच हासिल करते हुए सियासी इदारे पर असरदार बनने की कोशिश की जाए। यह तरीक़ा कामयाबी का यक़ीनी तरीक़ा है। इसके बर-अक्स दूसरा तरीक़ा नुक़सान और नाकामी का तरीक़ा है।

इस हक़ीक़त को दूसरे अल्फ़ाज़ में इस तरह बयान किया जा सकता है कि अक्सर हालात में किसी के ख़िलाफ़ बराह-ए-रास्त कार्रवाई मुफ़ीद नहीं होती। अक्सर हालात में ज़्यादा मुफ़ीद तरीक़ा यह है कि बिल-वास्ता अंदाज़ में अपनी कोशिश शुरू की जाए। बराह-ए-रास्त (direct) कार्रवाई के मुक़ाबले में बिल-वास्ता (indirect) कार्रवाई का अंदाज़ अक्सर हालात में ज़्यादा कामयाब साबित होता है।

## मुलाक़ात का सही तरीक़ा

क़ुरआन में बाहमी मुलाक़ात के आदाब बताते हुए एक तालीम यह दी गई है कि मुलाक़ात के लिए पेशगी इजाज़त का तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए। मज़्कूरा क़ुरआनी आयत है—

”يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَدْخُلُوا بُيُوتًا غَيْرَ بُيُوتِكُمْ حَتَّى تَسْتَأْنِسُوا وَتُسَلِّمُوا عَلَى أَهْلِهَا ذَلِكُمْ خَيْرٌ لَكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُونَ.“

"ऐ ईमान वालो, तुम अपने घरों के सिवा दूसरे घरों में दाख़िल न हो, जब तक इजाज़त हासिल न कर लो और घरवालों को सलाम न कर लो। यह तुम्हारे लिए बेहतर है, ताकि तुम याद रखो।" (24:27)

क़ुरआन की इस आयत में मुलाक़ात से पहले 'अपॉइंटमेंट' (appointment) लेने की अहमियत पर ज़ोर दिया गया है। एक शख़्स जब दूसरे शख़्स से मिलना चाहे तो उसके यहाँ जाने से पहले पेशगी तौर पर वह बाक़ाएदा उससे इजाज़त हासिल करे और फिर उसके यहाँ मिलने के लिए जाए। आदमी को ऐसा नहीं करना चाहिए कि वह किसी के यहाँ मुलाक़ात के लिए अचानक पहुँच जाए। इससे समाजी ज़िंदगी में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मसाइल पैदा होते हैं, हत्ता कि ख़ुद मुलाक़ात का मक़सद भी हासिल नहीं होता। अगर बिल-फ़र्ज़ कोई शख़्स पेशगी इजाज़त के बग़ैर किसी के यहाँ मिलने के लिए पहुँच जाए तो उसके अंदर यह हौसला होना चाहिए कि अगर मुताल्लिक़ा शख़्स अपने किसी उज़्र की बिना पर मुलाक़ात न कर सके या मुलाक़ात के लिए बहुत कम वक़्त दे तो उसे इस पर कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। उसे चाहिए कि वह अगली मुलाक़ात के लिए दोबारा वक़्त लेकर बिला-शिकायत वापस चला जाए। यह इंसानियत का आला तरीक़ा है और आला तरीक़े के बग़ैर कभी इंसानियत की आला तरक़्क़ी नहीं हो सकती।

जिस तरह हर चीज़ के आदाब हैं, उसी तरह मुलाक़ात के भी आदाब हैं। मुलाक़ात के आदाब में से कुछ यह है कि मुताल्लिक़ा शख़्स से इसकी पेशगी इजाज़त ली जाए। गुफ़्तुगू के वक़्त सुनाने के साथ सुनने का भी मिज़ाज हो। ग़ैर-ज़रूरी सवाल या बे-फ़ायदा तफ़्सील से बचा जाए। तनक़ीद और तारीफ़ से बुलंद होकर बात को सुना जाए। अपनी रिआयत के साथ दूसरे की रिआयत का भी पूरा लिहाज़ रखा

जाए। गुफ़्तुगू आहिस्ता अंदाज़ में की जाए। गुफ़्तुगू के वक़्त ज़ोर-ज़ोर से बोलना आदाब-ए-कलाम के ख़िलाफ़ है।

## टकराव से एराज़

क़ुरआन की सूरह अन-नमल में क़दीम क़ौम 'सबा' का एक वाक़या बयान हुआ है। इस वाक़ये से इज्तिमाई ज़िंदगी का एक अहम उसूल मालूम होता है। इसकी मुताल्लिक़ा आयतें हैं—

"قَالَتْ يَاأَيُّهَا الْمَلَأُ إِنِّي أُلْقِيَ إِلَيَّ كِتَابٌ كَرِيمٌ إِنَّهُ مِنْ سُلَيْمَانَ وَإِنَّهُ بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ أَلَّا تَعْلُوا عَلَيَّ وَأْتُونِي مُسْلِمِينَ قَالَتْ يَاأَيُّهَا الْمَلَأُ أَفْتُونِي فِي أَمْرِي مَا كُنْتُ قَاطِعَةً أَمْرًا حَتَّى تَشْهَدُونِ قَالُوا نَحْنُ أُولُو قُوَّةٍ وَأُولُو بَأْسٍ شَدِيدٍ وَالْأَمْرُ إِلَيْكِ فَانْظُرِي مَاذَا تَأْمُرِينَ قَالَتْ إِنَّ الْمُلُوكَ إِذَا دَخَلُوا قَرْيَةً أَفْسَدُوهَا وَجَعَلُوا أَعِزَّةَ أَهْلِهَا أَذِلَّةً وَكَذَلِكَ يَفْعَلُونَ."

"मलिका सबा ने कहा कि ऐ दरबार वालो, मुझे एक बहुत अहम ख़त पहुँचाया गया है। वह सुलेमान की तरफ़ से है और वह है—'शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है। तुम मेरे मुक़ाबले में सरकशी न करो और फ़र्माबरदार होकर मेरे पास आ जाओ।' मलिका ने कहा कि ऐ दरबार वालो, मेरे मामले में मुझे राय दो। मैं किसी मामले का फ़ैसला नहीं करती, जब तक तुम लोग हाज़िर न हो। उन्होंने कहा— 'हम लोग ज़ोर-आवर हैं और सख़्त लड़ाकू हैं और फ़ैसला आपके इख़्तियार में है, पस आप देख लें कि आप क्या हुक्म देती हैं। मलिका

ने कहा— 'बादशाह लोग जब किसी बस्ती में दाख़िल होते हैं तो उसे ख़राब कर देते हैं और उसके इज़्ज़त वालों को ज़लील कर देते हैं और यही यह लोग करेंगे'।"

(27:29-34)

इस आयत में मलिका सबा के हवाले से ज़िंदगी का एक उसूल बताया गया है। वह यह कि क़दम हमेशा नतीजे को देखकर बढ़ाना चाहिए, न कि महज़ ख़्वाहिश की बुनियाद पर। किसी के ख़िलाफ़ क़दम उठाना अगर मुस्बत नतीजा पैदा करने वाला हो तो ऐसे क़दम उठाने को दुरुस्त कहा जा सकता है, मगर जो इक़्दाम उल्टा नतीजा पैदा करने वाला (counter productive) हो, उससे बचना लाज़िमी तौर पर ज़रूरी है।

अमली इक़्दाम आइडियलिज़्म के तहत नहीं होता, बल्कि प्रैक्टिकल विज़डम के तहत होता है। अपना ज़ाती मामला हो तो आदमी आइडियल बन सकता है, मगर इज्तिमाई मामले में हर एक को प्रैक्टिकल ही बनना है, चाहे वह कोई आम आदमी हो या कोई हुक्मराँ हो।

## क़ाबिल-ए-एतिमाद मुलाज़िम

सूरह अल-क़सस में एक वाक़ये का बयान है। इसके ज़ेल में यह बताया गया है कि किसी मक़सद के लिए अच्छे मुलाज़िम का चुनाव करना हो तो उसके अंदर किन सिफ़ात को देखना चाहिए। क़ुरआन की मुतअल्लिक़ आयत यह है—

"قَالَتْ إِحْدَاهُمَا يَاأَبَتِ اسْتَأْجِرْهُ إِنَّ
خَيْرَ مَنِ اسْتَأْجَرْتَ الْقَوِيُّ الْأَمِينُ"

"उनमें से एक ने कहा कि ऐ मेरे बाप, उसे मुलाज़िम रख लीजिए। लेकिन बेहतरीन आदमी, जिसे आप मुलाज़िम रखें वही है, जो मज़बूत और अमानतदार हो।" (28:26)

इस आयत में क़ाबिल-ए-एतिमाद मुलाज़िम की सिफ़त को बताने के लिए दो अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं— क़वी (hard worker) और अमीन (honest)। यह दोनों सिफ़तें अब्दी सिफ़तें हैं। चाहे किसी भी ज़माने में और चाहे किसी भी काम के लिए मुलाज़िम का इंतिख़ाब करना हो तो इन दोनों की हैसियत बुनियादी सिफ़त की रहेगी। जो निज़ाम इन दो सिफ़तों के हामिल अफ़राद को हासिल कर ले, उसकी कामयाबी और तरक़्क़ी बिला शुबह यक़ीनी है।

क़ुव्वत का ताल्लुक़ मुलाज़िम की जिस्मानी ताक़त से है और अमानत का ताल्लुक़ उसके मिज़ाज से।

यही दोनों चीज़ें किसी मुलाज़िम को अच्छा मुलाज़िम बनाती हैं। अच्छा मुलाज़िम वह है, जो एक तरफ़ मेहनती हो और दूसरी तरफ़ उसके अंदर यह मिज़ाज हो कि वह टाइम की अहमियत को जाने और अपनी ड्यूटी में कमी को बरदाश्त न कर सके।

## सब्र से इमामत

सूरह अस-सजदा में एक गिरोह का ज़िक्र किया गया है, जिसे ख़ुदा ने लीडरशिप अता की। वह इस इज़्ज़त के मुस्तहिक़ कैसे क़रार पाए, उसका राज़ सब्र था। क़ुरआन की मज़्कूरा आयत यह है—

"وَجَعَلْنَا مِنْهُمْ أَئِمَّةً يَهْدُونَ بِأَمْرِنَا لَمَّا صَبَرُوا وَكَانُوا بِآيَاتِنَا يُوقِنُونَ."

"और हमने उनमें पेशवा बनाए, जो हमारे हुक्म से लोगों की

रहनुमाई करते थे, जबकि उन्होंने सब्र किया और वे हमारी आयतों पर यक़ीन रखते थे।" (32:24)

इस आयत से मालूम हुआ कि कामयाब लीडरशिप का राज़ सब्र है। सब्र किसी आदमी को सोच और किरदार के एतबार से दूसरों से बुलंद करता है और बुलंद सोच और बुलंद किरदार ही वह सिफ़तें हैं, जो किसी आदमी को दूसरों के ऊपर सरदारी का मक़ाम देती हैं। सब्र आदमी को हौसला-मंद बनाता है। सब्र एक रहनुमा की लाज़िमी ज़रूरत है। सब्र के बग़ैर कोई शख़्स लीडरशिप का रोल कामयाबी के साथ अंजाम नहीं दे सकता। कामयाब लीडर वह है, जो नफ़्स की ख़्वाहिशों के मुक़ाबले में सब्र करे, ना-ख़ुशगवार तजरबात पेश आने पर जज़्बात से काम लेने के बजाय सब्र करे और दुरुस्त फ़ैसला अपनाए, वह महरूमी के वाक़यात को ईगो का मसला बनाने के बजाय सब्र के साथ दानिशमंदाना अंदाज़ में अपना मंसूबा बनाए, मुसीबतों का मौक़ा आए तो परेशान होने के बजाय सब्र करके उसका हल तलाश करे वग़ैरह। क़ौम को कामयाबी के रास्ते पर चलाने के लिए सब्र व बरदाश्त की लाज़िमी तौर पर ज़रूरत है।

लोग उसी शख़्स या गिरोह को अपना इमाम तस्लीम करते हैं, जो उन्हें अपने से बुलंद दिखाई दे। जो उस वक़्त उसूल के लिए जिए, जबकि लोग अपने फ़ायदे के लिए जीते हैं। जो उस वक़्त इंसाफ़ की हिमायत करे, जबकि लोग क़ौम की हिमायत करने लगते हैं। जो उस वक़्त बरदाश्त करे, जबकि लोग इंतिक़ाम लेते हैं। जो उस वक़्त अपने को महरूमी पर राज़ी कर ले, जबकि लोग पाने के लिए दौड़ते हैं। जो उस वक़्त हक़ के लिए क़ुरबान हो जाए, जबकि लोग सिर्फ़ अपनी ज़ात के लिए क़ुरबान होना जानते हैं। यही सब्र है और जो लोग इस सब्र का सबूत दें, वही क़ौमों के इमाम बनते हैं।

# दुश्मन में दोस्त

क़ुरआन में फ़ितरत के जो क़वानीन बताए गए हैं, उनमें से एक क़ानून यह है कि कोई आदमी कभी किसी का पैदाइशी दुश्मन नहीं होता। हर आदमी की फ़ितरत वही है, जो किसी दूसरे आदमी की है। इसलिए किसी को भी अपना अब्दी दुश्मन नहीं समझना चाहिए। इस हक़ीक़त को सूरह फ़ुस्सिलत में इस तरह बताया गया है—

”وَمَنْ أَحْسَنُ قَوْلًا مِّمَّنْ دَعَا إِلَى اللَّهِ وَعَمِلَ صَالِحًا وَقَالَ إِنَّنِي مِنَ الْمُسْلِمِينَ وَلَا تَسْتَوِي الْحَسَنَةُ وَلَا السَّيِّئَةُ ادْفَعْ بِالَّتِي هِيَ أَحْسَنُ فَإِذَا الَّذِي بَيْنَكَ وَبَيْنَهُ عَدَاوَةٌ كَأَنَّهُ وَلِيٌّ حَمِيمٌ.“

“भलाई और बुराई दोनों बराबर नहीं। तुम जवाब में वह कहो, जो उससे बेहतर हो। फिर तुम देखोगे कि तुममें और जिसमें दुश्मनी थी, वह ऐसा हो गया, जैसे कोई दोस्त क़राबत वाला।” (41:33-34)

इसका मतलब यह है कि अगर कोई आदमी आपको अपना दुश्मन नज़र आए तो उसे अपना मुस्तक़िल दुश्मन न समझिए, बल्कि उसकी दुश्मनी को एक वक़्ती हालत समझिए। हर इंसान पैदाइशी एतबार से फ़ितरत-ए-सही पर पैदा होता है। हर इंसान पैदाइशी तौर पर वैसा ही एक इंसान है, जैसा कि कोई दूसरा शख़्स। दुश्मनी जैसी मनफ़ी चीज़ें इंसानी शख़्सियत का महज़ ऊपरी हिस्सा हैं, न कि उसका अंदरूनी हिस्सा।

दुश्मन के बारे में अगर इस क़िस्म की मुस्बत सोच पैदा हो जाएगी तो आदमी इस क़ाबिल हो जाएगा कि वह तास्सुब जैसे जज़्बात से ऊपर उठकर दुश्मन के मामले में अपना रवैया मुतय्यन करे। जो आदमी

इस तरह ग़ैर-जज़्बाती अंदाज़ में अपने दुश्मन से मामला करे, तो वह यक़ीनी तौर पर कामयाब होगा।

दुश्मन की मनफ़ी कार्रवाइयों की परवाह किए बग़ैर उसके साथ दोस्ताना सुलूक करना दुश्मन को बदल देगा। उसकी शख़्सियत के ऊपर दुश्मनी का जो मनफ़ी रवैया छा गया था, वह धुल जाएगा। उसके बाद यह होगा कि जो शख़्स ब-ज़ाहिर आपका दुश्मन बना हुआ था, वह आपका दोस्त बन जाएगा।

एक साहब मुलाक़ात के लिए आए, उनकी डायरी में मैंने बतौर नसीहत ये अल्फ़ाज़ लिखे—

"दुश्मन से बुरा सुलूक करना दुश्मन की दुश्मनी को बढ़ाता है और दुश्मन से अच्छा सुलूक करना दुश्मन की दुश्मनी को ख़त्म कर देता है।"

उन्होंने कहा कि आपका यह नज़रिया ब-ज़ाहिर अच्छा लगता है, मगर इस नज़रिये की बुनियाद क्या है? मैंने कहा कि यह नज़रिया दरअस्ल फ़ितरत का एक अटल उसूल है। इस उसूल को क़ुरआन (41:34) में बयान किया गया है।

अस्ल यह है कि कोई भी आदमी पैदाइश के एतबार से मिस्टर दुश्मन नहीं। पैदाइशी तौर पर हर आदमी मिस्टर दोस्त ही है, क्योंकि हर आदमी के अंदर वही फ़ितरत है, जो दूसरे आदमी के अंदर है। दुश्मनी दरअस्ल एक ऊपरी चीज़ है, जो वक़्ती जज़्बे के तहत किसी के दिल में मस्नूई तौर पर आ जाती है। दूसरा फ़रीक़ अगर रद्द-ए-अमल (reaction) का तरीक़ा इख़्तियार न करे, वह यक-तरफ़ा तौर पर नरमी और हुस्न-ए-सुलूक का अंदाज़ इख़्तियार करे तो दुश्मन का ज़ाहिरी पर्दा हट जाएगा और अस्ल फ़ितरत सामने आ जाएगी जो हर-एक के लिए दोस्त है, वह किसी के लिए दुश्मन नहीं।

गोया कि हर दुश्मन इंसान आपका एक इम्कानी दोस्त (potential friend) है। ऐसी हालत में बेहतरीन पॉलिसी यह है कि आप इस

इम्कान (potential) को वाक़या (actual) बनाएँ। आप ब-ज़ाहिर दुश्मन को अपने दोस्तों की फ़ेहरिस्त में शामिल कर लें।

## मुसीबत का सबब

सूरह अश-शूरा में बताया गया है कि मौजूदा दुनिया में शिकस्त और नाकामी का सबब क्या होता है। इस सिलसिले में क़ुरआन में इरशाद हुआ है—

"وَمَا أَصَابَكُمْ مِنْ مُصِيبَةٍ فَبِمَا كَسَبَتْ أَيْدِيكُمْ وَيَعْفُو عَنْ كَثِيرٍ."

"और जो मुसीबत तुम्हें पहुँचती है तो वह तुम्हारे हाथों के किए हुए कामों ही से पहुँचती है और बहुत-से क़ुसूरों को वह माफ़ कर देता है।" (42:30)

क़ुरआन की इस आयत में फ़ितरत का एक क़ानून बताया गया है। इस क़ानून के मुताबिक़, किसी की दुश्मनी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाती, बल्कि यह ख़ुद इंसान है, जो अपनी कोताही की सज़ा पा रहा है। हर मुसीबत का सबब आदमी के ख़ुद अपने अंदर होता है, न कि उसके बाहर।

इससे मालूम हुआ कि जब भी कोई आदमी किसी मुसीबत या किसी नुक़सान से दो-चार हो तो उसे इससे नजात पाने के लिए ख़ुद अपने अंदर अमल करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अपनी अंदरूनी कमियों को तलाश करके उनकी इस्लाह करे। यही वह वाहिद तरीक़ा है, जिसके ज़रिये वह अपने मुस्तक़बिल को दुरुस्त कर सकता है। इसके बजाय जो आदमी यह करे कि वह अपनी मुसीबत का ज़िम्मेदार दूसरों को बताकर उनके ख़िलाफ़ शिकायत और एहतिजाज में मसरूफ़ हो जाए, वह सिर्फ़ अपना वक़्त ज़ाए कर रहा है। ऐसी कोशिश कभी किसी मुस्बत नतीजे तक पहुँचने वाली नहीं।

क़ुरआन की यह आयत नतीजा-ख़ेज़ मंसूबा-बंदी के उसूल को बता रही है। इसका पैग़ाम यह है कि आदमी बे-नतीजा कार्रवाइयों से अपने आपको बचाए और सिर्फ़ नतीजा-ख़ेज़ सरगर्मियों में अपने आपको मसरूफ़ करे। यह फ़ितरत का क़ानून है और फ़ितरत का क़ानून कभी किसी के लिए बदलने वाला नहीं।

## ग़ुस्सा पी जाना

क़ुरआन में एक अहम अख़्लाक़ी उसूल बताया गया है। वह यह कि इज्तिमाई ज़िंदगी में जब एक आदमी को दूसरे के ऊपर ग़ुस्सा आए तो उसे चाहिए कि वह ग़ुस्से को पी जाए और उसे माफ़ कर दे। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

"وَإِذَا مَا غَضِبُوا هُمْ يَغْفِرُونَ."

"और जब उन्हें ग़ुस्सा आता है तो वे माफ़ कर देते हैं।" (42:37)

ग़ुस्सा एक ग़ैर-फ़ितरी हालत है। जब आदमी को ग़ुस्सा आता है तो उसका दिमाग़ अपनी फ़ितरी हालत पर बाक़ी नहीं रहता। वह संतुलित अंदाज़ में सोचने पर क़ादिर नहीं रहता। ग़ुस्से में मुब्तला इंसान न दुरुस्त तौर पर सोच पाता और न दुरुस्त तौर पर अपने अमल की मंसूबाबंदी कर सकता। ग़ुस्सा आदमी का एतिदाल छीन लेता है। वह उसे असंतुलित इंसान बना देता है।

हक़ीक़त यह है कि ग़ुस्से को पी जाना ख़ुद अपने आपकी हिफ़ाज़त करना है। ग़ुस्से को पी जाना इस बात की ज़मानत है कि आदमी हक़ीक़त-पसंदाना अंदाज़ में सोचे। वह ज़्यादा नतीजा-ख़ेज़ अंदाज़ में अपनी कार्रवाई की मंसूबाबंदी करे। ग़ुस्से को पी जाना ख़ारजी एतबार से एक अख़्लाक़ी सुलूक है, मगर दाख़िली एतबार

से वह अपनी तामीर के हम-मआनी है। जब कोई आदमी ग़ुस्से के हालात में ग़ुस्सा न करे तो वह अपने आपको बचाता है। वह अपनी क़ुव्वत को मनफ़ी रुख़ पर जाने से रोकता है और इस तरह अपने आपको इस क़ाबिल बनाता है कि वह अपने वसाइल को भरपूर तौर पर सिर्फ़ अपनी तामीर में लगाए। दूसरे की तख़रीब में ग़ैर-ज़रूरी तौर पर वह अपने वसाइल का कोई हिस्सा ज़ाए न करे।

## मशवरा मुफ़ीद है

क़ुरआन में अहल-ए-ईमान को जो तालीमात दी गई हैं, उनमें से एक तालीम वह है जिसे मशवरा कहा जाता है। क़ुरआन में अहल-ए-हक़ की जिन सिफ़ात को इख़्तियार करने पर उभारा गया है, उनमें से एक सिफ़त मशवरा है। चुनाँचे इरशाद हुआ है—

"وَأَمْرُهُمْ شُورَى بَيْنَهُمْ."

"और वे अपना काम आपस के मशवरे से करते हैं।" (42:38)

मशवरे का मतलब यह है कि किसी मामले में हल तलाश करने के काम को इज्तिमाई काम बना दिया जाए। अपनी समझ के साथ दूसरों की समझ को इसमें शामिल कर लिया जाए। मशवरे का मतलब गोया इन्फ़िरादी अक़्ल को इज्तिमाई अक़्ल बना देना है। मशवरा दोतरफ़ा मामला है।

ज़िंदगी के बारे में ख़ालिक़ का मंसूबा (scheme of things) यह है कि हर फ़र्द को यह मौक़ा दिया जाए कि वह अपनी शख़्सियत का इर्तिक़ा करके अपने आपको जन्नती इंसान बनाए। इसी निशाने की बिना पर इस्लाम में यह तरीक़ा इख़्तियार किया गया है कि समाजी

मामलात को शूरा के उसूल पर मबनी क़रार दिया गया यानी समाजी हक़ाइक़ (social realities) की बुनियाद पर।

मशवरे में यह होता है कि कई आदमी किसी मौज़ू पर डिस्कशन करते हैं। इस तरह के डिस्कशन के फ़ायदों में से एक फ़ायदा यह है कि मामले के नए-नए पहलू सामने आते हैं। मशवरा अगर खुले ज़हन के साथ किया जाए और तनक़ीद व तारीफ़ के जज़्बे से बुलंद होकर उसे सुना जाए तो मशवरे की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। मशवरे में जो फ़ायदे हैं, उनके हुसूल के लिए ज़रूरी है कि लोग खुले ज़हन के साथ बोलें, बल्कि वे जो कुछ कहें खुले ज़हन के साथ कहें और सुनने वाले भी उसे खुले ज़हन के साथ सुनें।

यह सब मशवरे के आदाब हैं। जिस मशवरे में इन आदाब का लिहाज़ रखा जाए, वह मशवरा बेहद बा-बरकत बन जाता है। मशवरे को अगर हुस्न-ए-नीयत के साथ किया जाए तो वह एक इबादत है। मशवरा कोई सादा बात नहीं। मशवरे से दीन और दुनिया दोनों में फ़ायदा मिलता है। यही वजह है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम हमेशा अपने असहाब के साथ खुले दिल से मशवरा करते थे और लोग किसी पाबंदी के बग़ैर अपनी राय देते थे।

(सीरत इब्ने-हिशाम, जिल्द 2, सफ़्हा 192)

हज़रत अबू-हुरैरा कहा करते थे—

”مَا رَأَيْتُ أَحَدًا أَكْثَرَ مُشَاوَرَةً لِأَصْحَابِهِ مِنْ رَسُولِ اللَّهِ صَلَّى اللَّهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ.“

“मैंने किसी को नहीं पाया, जो अपने असहाब से इतना ज़्यादा मशवरा करता हो, जितना रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम किया करते थे।”

(सहीह इब्ने-हिब्बान, हदीस नंबर 4,872)

मौजूदा ज़माने में इसी अमल को डायलॉग कहा जाता है। डायलॉग मुबाहिसा या मुनाज़रा (debate) से अलग होता है। डायलॉग एक तख़्लीक़ी (creative) अमल है। सही डायलॉग उस वक़्त वजूद में आता है, जबकि दोनों पार्टियों में इस क़िस्म की दो-तरफ़ा स्पिरिट पाई जाती हो। डायलॉग अगर मुबाहिसा और मुनाज़रा बन जाए, तो इससे किसी पार्टी को कुछ नहीं मिलेगा। इसके बर-अक्स अगर डायलॉग में दो-तरफ़ा सीखने (mutual learning) की स्पिरिट मौजूद हो तो डायलॉग दोनों फ़रीक़ों के लिए ज़हनी इर्तिक़ा का ज़रिया बन जाएगा।

## दावत यानी इंसानी ख़ैर-ख़्वाही

मई, 2004 में अरब अमीरात के लिए मेरा एक सफ़र हुआ था। वहाँ मैंने दुबई का अंग्रेज़ी अख़बार 'ख़लीज टाइम्स' 6 मई, 2004 का शुमारा देखा। इसमें एक ख़बर थी जिसमें बताया गया था कि शारजाह की हुकूमत ऐसे इक़्दामात कर रही है, जो पर्यावरण को बिगड़ने से बचाने वाले हों। इस ख़बर का उनवान था—

"शारजाह इको फ्रेंडली प्रोजेक्ट चलाने वाला है।"

"Sharjah to launch eco-friendly project."

आजकल इको फ्रेंडली मंसूबों का बहुत चर्चा है। ख़ुद मुस्लिम मुल्कों में भी इसकी काफ़ी धूम है। मैंने सोचा कि मंसूबा-ए-तख़्लीक़ की निस्बत से देखा जाए तो एक और निहायत ज़रूरी काम यह है कि मदऊ फ्रेंडली मंसूबे जारी किए जाएँ, मगर सारी दुनिया में मुसलमान इस क़िस्म की बात सोचने के लिए तैयार नहीं। मुसलमानों ने इसके बर-अक्स ऐसे हंगामे जारी कर रखे हैं, जो मदऊ को दुश्मन बनाए हुए हैं, मगर मदऊ को दोस्त बनाने की शऊरी कोशिश पूरी मुस्लिम दुनिया में कहीं नज़र नहीं आती। हक़ीक़त यह है कि मदऊ फ्रेंडली मंसूबा न चलाने की सूरत में यह

शदीदतर अंदेशा मौजूद है कि उनकी आख़िरत ख़तरे में पड़ जाए।

इस्लामिक वर्क हक़ीक़तन वह है, जो 'दावह वर्क' हो यानी इंसानों को ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ (creation plan of God) से आगाह करना। दावह वर्क कोई सादा चीज़ नहीं। दावत दरअस्ल इंसान से मुहब्बत और ख़ैर-ख़्वाही का इज़्हार है, मगर मौजूदा मुसलमानों का हाल यह है कि वे दूसरी क़ौमों से नफ़रत करते हैं, वे उन्हें अपना दुश्मन समझते हैं। ऐसी हालत में वे इस क़ाबिल ही नहीं कि वे दूसरी क़ौमों के दरमियान दावत का काम कर सकें।

दावह वर्क के लिए कुछ लाज़िमी शर्तें हैं। इसमें सबसे अहम शर्त यह है कि दाई अपने मदऊ का मुकम्मल तौर पर ख़ैर-ख़्वाह हो। वह यक-तरफ़ा तौर पर मदऊ के साथ एडजस्टमेंट करे। दाई और मदऊ का रिश्ता इसी क़िस्म का एक रिश्ता है, जैसे कि ताजिर और कस्टमर का होता है। हर ताजिर जानता है कि उसे अपने कस्टमर के साथ आख़िरी हद तक ख़ैर-ख़्वाही का मामला करना है। दाई का फॉर्मूला ताजिर की तरह यह होना चाहिए—

"We are always Madu friendly."

## सी.पी.एस. का मक़सद

एक साहब ने कहा कि आपने बाज़ क़ौमी और मिल्ली मसाइल के बारे में ऐसे बयानात दिए हैं, जिनकी वजह से आप मिल्लत से अलग-थलग हो गए हैं। यह चीज़ आपके मिशन के लिए मुफ़ीद नहीं। आपको मिल्लत के मिज़ाज की रिआयत करते हुए अपना काम करना चाहिए। अपनी क़ौम को नज़रअंदाज़ करके कोई शख़्स अपने मक़सद में कामयाब नहीं हो सकता। मैंने कहा कि आप पर ग़ालिबन यह बात

वाज़ेह नहीं कि मेरा निशाना क्या है। आप दूसरों के निशाने को जानते हैं और उन्हें मेरे ऊपर चस्पाँ करना चाहते हैं। मेरे निशाने और दूसरे लोगों के निशाने में एक बुनियादी फ़र्क़ है। वह यह कि दूसरों का निशाना अमली नतीजा होता है और हमारा निशाना पहुँचा देना है। दूसरों की कामयाबी इसमें है कि क़ौम उनका साथ दे, ताकि वे अपने मतलूब नतीजे को हासिल कर सकें। इस निशाने की बिना पर वे इसे ज़रूरी समझते हैं कि वे कोई ऐसी बात न कहें, जो क़ौम के मिज़ाज के ख़िलाफ़ हो और क़ौम उनसे कट जाए।

इसके बर-अक्स हमारा मामला यह है कि हम ख़ालिसतन दावत इलल्लाह के लिए उठे हैं। इस मक़सद की बिना पर हमारा निशाना सिर्फ़ इब्लाग़ है (सूरह यासीन, 36:17) यानी अल्लाह के पैग़ाम को लोगों तक 'ऐज़ इट इज़' यानि जैसा है वैसे ही पहुँचा देना। हमारी ज़िम्मेदारी यह है कि हम ख़ैर-ख़्वाह और अमानतदार की हैसियत से अल्लाह का पैग़ाम लोगों तक पहुँचा दें। इसके बाद यह दूसरों की ज़िम्मेदारी है कि वे अमलन उसके साथ क्या रवैया इख़्तियार करते हैं। मैंने कहा कि दूसरी बात यह है कि मुस्लिम मिल्लत में दो क़िस्म के लोग हैं— एक वह, जो मुस्लिम मफ़ाद के नाम पर हंगामे की सियासत चलाते हैं। इस गिरोह में कुछ लोग सोच की सतह पर ऐसे हैं और कुछ लोग अमली सतह पर। उनका नुक़्ता-ए-नज़र यह है कि मिल्लत आज दुश्मनों से और साज़िश करने वालों से घिरी हुई है। इसलिए ज़रूरी है कि इन लोगों से मुक़ाबला किया जाए। मैं बिला शुबह उस तबक़े से कटा हुआ हूँ, लेकिन इसी के साथ मिल्लत में दूसरा तबक़ा भी है, जो संजीदा है, जो दूसरों के ख़िलाफ़ मनफ़ी हंगामे के बजाय ख़ुद अपनी इस्लाह को अहमियत देता है, जो जिहाद के नाम पर तशद्दुद के बजाय पुर-अम्न दावत इलल्लाह में यक़ीन रखता है। मिल्लत का यह दूसरा तबक़ा सारी दुनिया में मेरे साथ है और इस तबक़े के तआवुन से आज हमारा मिशन हर जगह कामयाबी के साथ चल रहा है। फिर मैंने एक अरब शाइर का

यह शेर पढ़ा—

"فان اك في شرارِكُم قليلاً، فاني في خياركم كثير"

"मेरी हैसियत आपके बुरे लोगों में कम है
लेकिन यक़ीनन आपके अच्छे लोगों में ज़्यादा है।"

## आतिश-फ़िशाँ का सबक़

आतिश-फ़िशाँ (volcano) ज़मीन या किसी दूसरे सय्यारे या सय्यार्चा की परत से निकलने वाला गर्म माद्दा है। इससे पिघली हुई चट्टान, चट्टान के गर्म टुकड़े और गर्म गैसें निकलती हैं। अमेरिका के ख़लाई इदारा नासा की वेबसाइट पर आतिश-फ़िशाँ की तारीफ़ इन अल्फ़ाज़ में बयान की गई है—

A volcano is an opening on the surface of a planet or moon that allows material warmer than its surroundings to escape from its interior. When this material escapes, it causes an eruption. An eruption can be explosive, sending material high into the sky.

आतिश-फ़िशाँ किसी सय्यारे या चाँद की सतह पर एक ऐसा दहाना है, जो आस-पास से ज़्यादा गर्म मवाद को अपने अंदर से ख़ारिज होने देता है। जब यह मवाद ख़ारिज होता है तो फटने का सबब बनता है। फटना धमाका-ख़ेज़ हो सकता है। यह मवाद को आसमान की जानिब ऊँचा फेंकता है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के मुताबिक़ आतिश-फ़िशाँ का फटना ज़मीन की ताक़त का एक हैबतनाक ज़ाहिरा है।

आतिश-फ़िशाँ क़ुदरती आफ़ात (natural disasters) में से है। इसके इलावा चंद दूसरे क़ुदरती आफ़ात यह हैं— जंगल की आग,

आँधी, सैलाब, टॉरनेडो, समंदरी तूफ़ान, ज़लज़ले, लैंडस्लाइड, सुनामी वग़ैरह।

यह क़ुदरती आफ़ात माहौल पर इस तरह असर-अंदाज़ होते हैं कि प्राकृतिक संसाधन (natural resources), माली और जानी नुक़सान का सबब बनते हैं। इसके सामने इंसान और उसकी सारी तरक़्क़ियाँ बेबस हो जाती हैं। अगर ग़ौर किया जाए तो इन क़ुदरती तजरबात से यह सबक़ मिलता है कि इंसान इस दुनिया का मास्टर नहीं है। इस दुनिया में इंसान को मुतवाज़े (modest) बनकर रहना चाहिए, ताकि वह इन तजरबात से सबक़ हासिल करने वाला बने। (डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

## ट्विट्टर का सी.ई.ओ.

ट्विट्टर माइक्रो ब्लॉगिंग वेबसाइट है। नवंबर, 2021 में इंडियन-अमेरिकन पराग अग्रवाल (पैदाइश : 1984) को ट्विटर का नया सी.ई.ओ. मुंतख़ब किया गया है। इस बात का ऐलान विदा होने वाले सी.ई.ओ. जैक पैट्रिक डोरसी (पैदाइश : 1976) ने अपने ट्विटर ब्लॉग के ज़रिये किया। उसके ब-क़ौल मिस्टर पराग कंपनी और उसकी ज़रूरतों को पूरी तरह समझते हैं। कंपनी को आगे बढ़ाने के हर अहम फ़ैसले के पीछे पराग का रोल होता था। वह जिज्ञासु, तहक़ीक़ का शौक़ रखने वाले, रेशनल, क्रिएटिव, मेहनती, ख़ुद-आगाह और मुतवाज़े (modest) इंसान हैं। वह पूरे दिल-ओ-जान से क़ियादत का फ़र्ज़ निभाते हैं और वह उन लोगों में से हैं, जिनसे मैं हर दिन कुछ सीखता हूँ—

He (Parag) understands the company and its needs. Parag has been behind every critical decision that helped turn this company around. Hes curious, probing, rational,

creative, demanding, self-aware, and humble. He leads with heart and soul, and is someone I learn from daily.

किसी भी मैदान में तरक़्क़ी का राज़ क्या है? वह वही है, जिसका ज़िक्र मिस्टर जैक ने मिस्टर पराग के लिए किया है। कामयाबी का यह उसूल न सिर्फ़ सेकुलर फ़ील्ड के लिए है, बल्कि मज़हबी फ़ील्ड के लिए भी है। हक़ीक़त यह है कि तरक़्क़ी दरअस्ल इंसान के पोटेंशियल को एक्चुअल बनाने का नाम है और अपने पोटेंशियल को एक्चुअल वही इंसान बना सकता है, जो अपने अंदर इन सिफ़ात को पैदा करे। यही किसी मक़सद में कामयाब होने का राज़ है। इस क़िस्म की गहरी वाबस्तगी के बग़ैर कोई बड़ा काम नहीं किया जा सकता है— न दुनिया में और न आख़िरत में।

एक हदीस-ए-रसूल में कामयाबी के राज़ को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

”إِنَّمَا الْعِلْمُ بِالتَّعَلُّمِ، وَإِنَّمَا الْحِلْمُ بِالتَّحَلُّمِ، مَنْ يَتَحَرَّى الْخَيْرَ يُعْطَهُ، وَمَنْ يَتَّقِ الشَّرَّ يُوقَهُ.“

“इल्म आता है सीखने के जज़्बे से, बुर्दबारी आती है बरदाश्त पैदा करने से। जो ख़ैर तलाश करता है, उसे ख़ैर मिलती है और जो शर से बचना चाहता है, उसे बचा लिया जाता है।”

(अल-मोजम-अल-औसत, अल-तबरानी, हदीस नंबर 2,663)

एक और रिवायत में है—

”وَالْفِقْهُ بِالتَّفَقُّهِ.“

“कोशिश करने से गहरी समझ पैदा होती है।”

(अल-मोजम-अल-कबीर, अल-तबरानी, हदीस नंबर 929)

– डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम –

# ख़बरनामा इस्लामी मरकज़

हिंदुस्तान हो या अरबिस्तान, सबके लिए पुर-अम्न तरक़्क़ी और पुर-अम्न दावत का ही ऑप्शन है।

“मौलाना की ज़िंदगी से ही मौलाना के मशवरे और प्लानिंग पर अमल होने लगा है। ‘नेशन बिल्डिंग’ की बात हो या ‘नेबर फ्रेंडली बिहेवियर’ की बात। अब अरबों के लिए इसराईल एक दोस्त मुल्क बन रहा है और हिंदुस्तानी मुसलमान आर.एस.एस. वग़ैरह के साथ रहना भी सीख गए हैं। नफ़रत की जगह समाजी रवादारी की बात आगे बढ़ रही है। अल्लाह तआला का शुक्र है कि अल्लाह ने ‘अल-रिसाला मिशन’ की सच्चाई को हमारे लिए क़ाबिल-ए-फ़हम बना दिया। हालाँकि लोग मजबूरी के तहत इस हक़ीक़त को मानते हैं, मगर अल्लाह ने हमें क़ुरआन व हदीस की बुनियाद पर मिशन को अपनाने की तौफ़ीक़ अता की है।”

~ सय्यद इक़बाल अहमद उमरी, तमिलनाडु ~

“मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान मेरे लिए रूहानी बाप का दर्जा रखते हैं। हर वह बात जो वालिदैन अपनी औलाद को सिखाते हैं, मैंने मौलाना की तहरीरों और बयानात से सीखने की कोशिश की है। ख़ुदा से बंदे का ताल्लुक़ और बंदे से बंदे का ताल्लुक़ मैंने मौलाना की किताबों और तक़रीरों में पाया। पहली किताब ‘राज़-ए-हयात’ अल-हुदा इस्लामिक इंस्टीट्यूट में पढ़ी थी, लेकिन तब मैं मौलाना को नहीं जानती थी। एक दिन यू-ट्यूब पर मौलाना को अम्न के बारे में गुफ़्तुगू करते सुना। मैं समझती हूँ कि वह लम्हा मेरी अब तक की ज़िंदगी का बेहतरीन लम्हा था। बस फिर क्या था! मौलाना को बिला नाग़ा हर दिन सुनना और उनकी पुर-हिक्मत तक़रीरों के नोट्स तैयार करना मेरे रूटीन में शामिल हो गया और रफ़्ता-

रफ़्ता उनके लेक्चर्स मेरी ज़िंदगी पर असर-अंदाज़ होते गए। मौलाना की हर किताब अपनी मिसाल आप है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने तौहीद को जिस तरह वाज़ेह अंदाज़ में बयान किया है, उसे सुनकर मुझे थ्रिल होता है। एक दिन मौलाना के बारे में मैं अपनी बहन से बात कर रही थी तो उसने बड़ी प्यारी बात कही कि "आपा, एक सदी से ख़ुदा की खोज में हैं मौलाना और मैंने भी अपनी ज़िंदगी में पहले इंसान को पहली बार इस शिद्दत के साथ, ख़ुदा से सिर्फ़ ख़ुदा को माँगते देखा, ख़ुदा हम सबको इस खोज में उनका सच्चा साथी बना दें।" हम सब अपनी ज़िंदगी में किसी-न-किसी कमी का शिकार होते हैं। मौलाना की तहरीरें इंसान को अपनी हर कमी हर महरूमी को ताक़त में बदलने का हुनर सिखाती हैं। इस सिलसिले में मौलाना साहब के मिशन को लोगों तक पहुँचाने के लिए मेरा मशवरा यह है कि (1) अपने घर-ख़ानदान में सबको मौलाना के बारे में बताएँ। (2) तमाम फ़ैमिली मेंबर को 'तज़्कीरुल क़ुरआन' और दूसरी किताबें गिफ़्ट करें। (3) घर में लाइब्रेरी बनाएँ और मौलाना के तमाम लिटरेचर इसमें रखें। (4) अपने इलाक़े में लाइब्रेरी बनाएँ, इलाक़े के स्कूल और कॉलेजों की लाइब्रेरियों में रखवाएँ। (5) अपनी सलाहियत को इस मिशन के लिए बेहतरीन अंदाज़ में इस्तेमाल करें।"

~ शुमाएला आशिक़, शेख़ूपुरा, पंजाब, पाकिस्तान ~

"मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबों और आर्टिकल्स से ख़ुदा एक जामिद अक़ीदे के बजाय एक ज़िंदा हस्ती के तौर पर सामने आए। अल्लाह की मारिफ़त, अज़्मत, रबूबिय्यत और क़ुदरत को समझने और ख़ुदा की याद में जीने का मतलब सही तरह समझ में आया और ज़िंदगी में पेश आने वाले हालात-ओ-वाक़यात को लेकर सोचने और उनसे इबरत-ओ-नसीहत लेने का ज़हन बना। अपना मुहासबा करना, अपनी ग़लती को ढूँढना और लोगों के साथ अच्छा रवैया रखना और दावत का मिज़ाज पैदा हुआ। ख़ास तौर पर मौलाना ने जिस तरह ख़ुदा के तख़्लीक़ी मंसूबे, ना-ख़ुशगवार वाक़यात और इख़्तिलाफ़ात को

मैनेज करने और आख़िरत व जन्नत के तसव्वुर को वाज़ेह किया है। इससे बहुत ही अनोखा तजरबा हुआ, दुनिया को देखने और ज़िंदगी को समझने का एंगल ही बदल गया। सर, मैं CPS के मिशन में शामिल होना चाहता हूँ, प्लीज़ गाइड मी।"

~ शाहिद अली, उमरकोट, सिंध ~

"मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम मरदान से हासिल की। फिर जामिआ रिज़विय्या ज़िया-उल-उलूम रावलपिंडी से हिफ़्ज़ किया। कुछ अरसा भेरा-शरीफ़ में तालीम हासिल की। उसके बाद तंज़ीम-उल-मदारिस से दर्स-ए-निज़ामी मुकम्मल किया। साल 2016 में इस्लामाबाद से एल.एल.बी. किया। अभी मैं हाईकोर्ट लेवल का वकील हूँ। जावेद अहमद ग़ामदी साहब, अबू याहया और हाल ही में वहीदुद्दीन ख़ान साहब के काम से वाक़फ़ियत हुई, जिसने मेरे सोचने-समझने के तरीक़े को बिलकुल बदल दिया और रिवायती, मज़हबी व गिरोही तअस्सुबात से अल्लाह के फ़ज़्ल-ओ-करम और उन हज़रात की तहरीरों और तक़रीरों की बदौलत छुटकारा मिला। ख़ान साहब का लिटरेचर रूह की ग़िज़ा और पाकीज़गी का बेहतरीन इंतिज़ाम करती है। तज़्कीर-उल-क़ुरआन ऐसा ख़ूबसूरत तर्जुमा और तफ़्सीर है, जो क़ुरआन की हर आयत को क़ारी से मुतअल्लिक़ कर देती है। हाल ही में इख़्वान-ए-रसूल के नाम से ख़ान साहब की वीडियो देखी। दिल में शौक़ पैदा हुआ कि क्यों न इस गिरोह में और उन ख़ुद्दाम-ए-दीन-मतीन की सफ़ में ख़ुद को शामिल कर लिया जाए, चाहे अदना दर्जे में क्यों न हो। दुआ है कि अल्लाह पाक हमें अपनी इस्लाह की तौफ़ीक़ और इसके बाद अपनी ख़िदमत के लिए क़बूल फ़रमाए और जो मिशन यह ज़ईफ़ इंसान इस बुढ़ापे में चला रहा है, हम उसे भरपूर तरीक़े से आगे बढ़ा सकें।"

~ शाह ख़ालिद, पाकिस्तान ~

"हज़रत मरहूम के सिलसिले में जो 'अल-रिसाला' ख़ुसूसी शुमारा

(अगस्त-सितंबर, 2021) शाए हुआ है। इस वक़्त मैं उसका मुताला कर रहा हूँ। मैं हनफ़ी-उल-मस्लक देवबंदी हूँ। दारुल-उलूम देवबंद ने मौलाना मरहूम के सिलसिले में उन अक़ाइद व अफ़्क़ार से मुताल्लिक़ जो फ़तवा दिया था, मैंने उसे भी पढ़ा है, लेकिन मैं उनसे हटकर बात करना चाहता हूँ। मैं मौलाना मरहूम को शुरू-शुरू में बिल्कुल नहीं जानता था, मगर मेरे चचाज़ाद भाई मौलाना मज़हर जमील रशीदी साहब (मुक़ीम-हाल अलीगढ़) मौलाना को बहुत ही ख़ुश-उस्लूबी के साथ पढ़ते थे और उनके ज़रिये ही मैंने भी मौलाना की कुछ किताबें पढ़ीं। मसलन मुताला-ए-क़ुरआन, हिंदुस्तानी मुसलमान, रोशन मुस्तक़बिल, यकसाँ सिविल कोड वग़ैरह। इसके बाद मैंने ख़ुद मौलाना मरहूम की कई किताबें खरीदीं और बा-ज़ाब्ता तौर पर मुताला करना शुरू किया। मैंने अभी हाल ही में मौलाना मरहूम की एक किताब ख़ातून-ए-इस्लाम ख़त्म की है। जब मैं ख़ातून-ए-इस्लाम पढ़ रहा था तो मेरा हाल यह था कि दौरान-ए-मुताला मैं इतना ग़र्क़ हो जाता था कि खाना-पीना भी मुझे याद नहीं रहता था। इस वक़्त 'अल-रिसाला' का मुताला कर रहा हूँ। इसे पढ़ते हुए मुझे यह एहसास हो रहा है कि हमने किस क़दर अज़ीम हस्ती को खो दिया है। वह हस्ती जिसकी उम्मत को सख़्त ज़रूरत थी। ऐसा लगता है कि लोग बेकार ही मौलाना के ऊपर उँगलियाँ उठाते हैं। जब मैं 'ख़ातून-ए-इस्लाम' नाम की किताब पढ़ रहा था, उस वक़्त दिल से मरहूम के लिए दुआएँ निकल रही थीं। मौलाना का यह एहसान है कि उन्होंने आने वाली नस्लों के लिए इस्लाम को असरी उस्लूब में आसान बनाकर पेश कर दिया है। उलमा के ऊपर नई नस्ल का यह क़र्ज़ था, जिसे मौलाना ने अदा करने की कोशिश की है। मौलाना मरहूम ने क़ुरआन व हदीस को लॉजिकली और साइंसी तौर पर क़ाबिल-ए-फ़हम बनाया है और जिन लोगों ने इस्लाम पर जदीद साइंसी डिस्कवरी की रोशनी में एतराज़ किया था, मौलाना मरहूम ने उनका अक़्ली और रिवायती तौर पर दोनो तरीक़ों से जवाब दिया। दौर-ए-हाज़िर में इस्लाम का जो दिफ़ा किया, वह अपने आपमें एक मिसाल है।"

~ मौलाना नबील अहमद रशीदी, मेंबर जमीयत-ए-उलमा, बिजनौर ~

"'अल-रिसाला' (ख़ुसूसी शुमारा दाई-ए-इस्लाम मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान) जब भी पढ़ा, इसमें गुम हो गया। ख़ुसूसी शुमारा मेरे हाथ से अलग नहीं हो पा रहा है। जहाँ भी मैं जाता हूँ, उसे साथ रखता हूँ। एक कॉपी तो ऑफ़िस में भी रख ली है। रिसाला पर जब भी मौलाना की तस्वीर देखता हूँ तो एक ख़ुशी होती है और आँखें नम हो जाती हैं। ख़ुसूसी शुमारा भी आज तक छपने वाले तमाम अल-रिसालों की तरह हिक्मत से भरपूर है। मौलाना की शख़्सियत के बहुत-से नए पहलू नज़र आए। यह 'अल-रिसाला' भी 'फ़ुल ऑफ़ विज़्डम' है। इसमें लिखे गए तमाम मज़ामीन दिल की गहराइयों से गुज़रकर आँखों से आँसुओं की शक्ल में आते हैं। मौलाना एक अज़ीम हस्ती हैं। मैं बहुत शुक्रगुज़ार हूँ कि फ़रीदा आपा, फ़रहाद साहब और इंडिया टीम ने इसे मुरत्तब किया।"

~ तारिक़ बदर, लाहौर, पाकिस्तान ~

"मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की किताबों का क़ीमती तोहफ़ा दो रोज़ क़ब्ल (18 अक्तूबर, 2021) मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की 155 तसानीफ़ इदारा को मौसूल हुई हैं। बिला शुबह मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान का उस्लूब, इस्तिदलाल की क़ुव्वत और तज्ज़िया की सलाहियत क़ाबिल-ए-तक़लीद है। इसी ख़ुसूसियत की वजह से मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान को दौर-ए-जदीद के मुसन्निफ़ीन में मुनफ़रिद और नुमायाँ मक़ाम हासिल है। मौलाना मरहूम की किताबें देर तक और दूर तक इस्लाम पर ईमान, एतिक़ाद और एतिमाद का दर्स देती रहेंगी। ख़ुदा उनकी तसानीफ़ को सदक़ात-ए-ज़ारिया बनाए, आमीन! इदारा इस मौक़े पर जनाब सानीयसनैन साहब, ट्रस्टी सी.पी.एस. इंटरनेशनल, नई दिल्ली का बेहद मम्नून-ओ-मशकूर है कि उन्होंने इदारे की तलब पर मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की क़ीमती किताबें बतौर-ए-तोहफ़ा लाइब्रेरी के लिए भेजीं।"

~ इदारा तहक़ीक़-ओ-तसनीफ़ इस्लामी, अलीगढ़ ~

RNI No. 50760/90

## शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

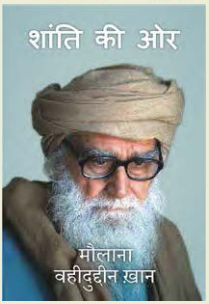


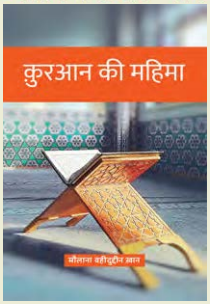


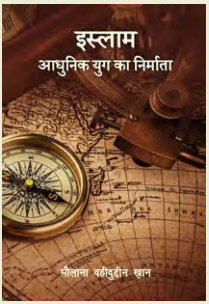


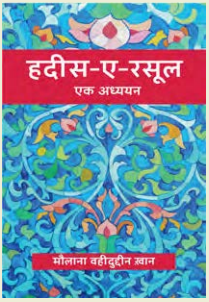


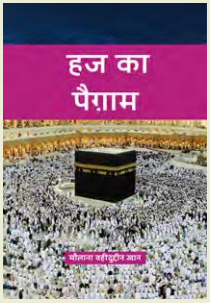


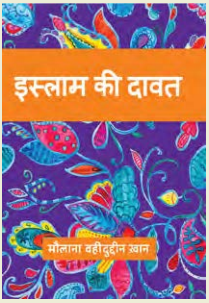


## आध्यात्मिक सेट

₹30/-

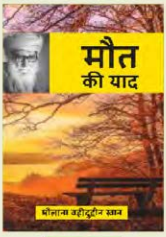


₹40/-

₹20/-

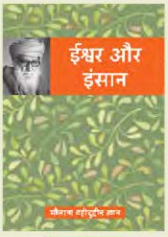


₹40/-

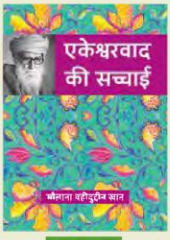


₹30/-

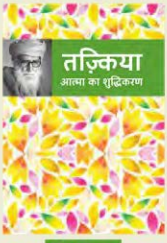


₹45/-

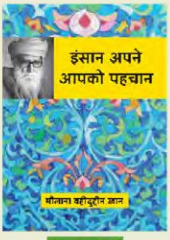


₹20/-

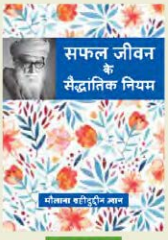


₹40/-